वर्ष–2, अंक–10
इंटरनेट संस्करण : 73

पत्रिका गर्भनाल

ISSN 2249–5967
दिसम्बर 2012

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

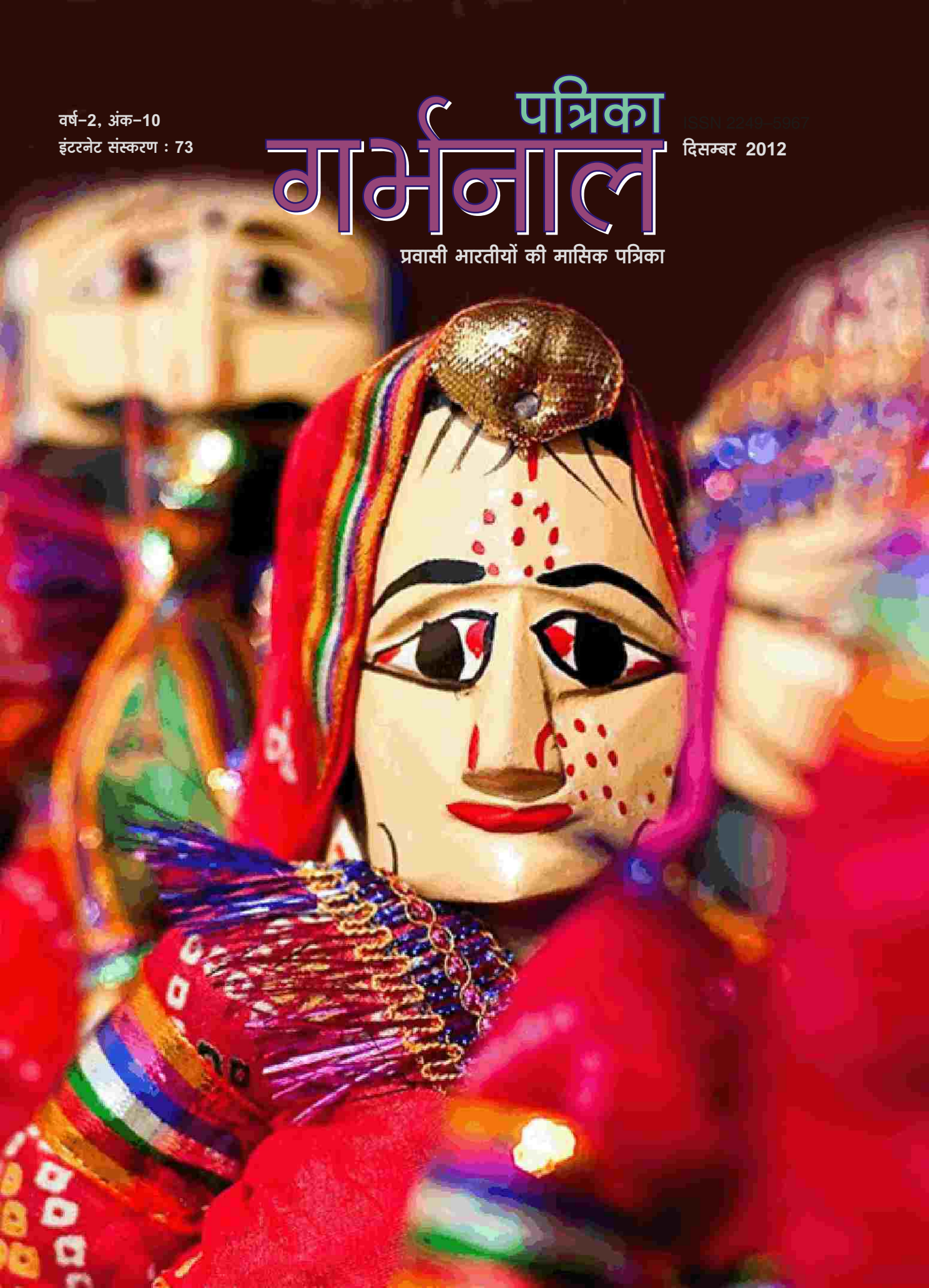

आईये, आभार प्रकट करें

9वें विश्व हिन्दी सम्मेलन–2012
में सम्मानित विदेशी मूल के हिन्दी–प्रेमी विद्वानों के
कृतित्व, हिन्दी के लिये उनके योगदान को
उजागर करने में सहयोग कीजिये!
धन्यवाद कहिये!

विद्वानों के नाम हैं :

डॉ. पीटर गेराल्ड फ्रेडलान्डर, ऑस्ट्रेलिया

प्रो. सेर्गेई सेरेबिरयानी, रूस

डॉ. डगमार मार्कोवा, चेक गणराज्य

मार्को जोली, इटली

प्रो. ल्यू अन्वूक, चीन

डॉ. श्रीमती बूधू, मारीशस

श्री बमरूंग खाम, थाइलैंड

प्रो. उपुल रंजीत हेवाताना गामेज, श्रीलंका

सुश्री वान्या जार्जिवा गंचेवा, बुल्गारिया

श्री जबुल्लाह 'फीकरी', अफगानिस्तान

श्री भोलानाथ नारायण, सूरीनाम

सुश्री कैटरीना बालेरीवा दोवबन्या, उक्रेन

डॉ. कृष्ण कुमार, ब्रिटेन

श्री इंदुप्रकाश पांडेय, जर्मनी

डॉ. बारबरा लाड्र्स, जर्मनी

श्री सत्यदेव टेंगर, मारीशस

प्रो. टिकेदी इशिदा, जापान

डॉ. तोमोको किकुचि, जापान

श्री विजय राणा, ब्रिटेन

श्री वेदप्रकाश बटुक, अमेरिका

जानकारी भेजने के लिये ईमेल पता है :
garbhanal@ymail.com

अपनी बात

विगत महीने चण्डीगढ़ में पी.जी.आई. में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में नामांकन के लिए आयोजित प्रतियोगिता परीक्षा में चार अलग-अलग केन्द्रों से सात मेडिकल छात्राओं तथा नगर के होटलों से ९ युवकों को परीक्षा में गलत तरीकों का इस्तेमाल करने के आरोप में गिरफ्तार किया गया. बाद में पता चला कि उन लड़कियों में से कोई भी मेडिकल छात्रा नहीं थी, वे सबके सब फर्जी प्रमाण-पत्रों के आधार पर परीक्षा भवन में दाखिल हुई थीं. ये लड़कियाँ सिर्फ प्रश्नपत्रों को लीक करने के लिए ही परीक्षा में शामिल हुई थीं. इनके लिए एमबीबीएस के फर्जी प्रमाण-पत्र बनवाए गए थे. प्राप्त जानकारी के अनुसार बीस परीक्षार्थियों को इस योजना से लाभ होना था. हर छात्र से ५ लाख रुपए लिए गए थे. हर लड़की को एक लाख रुपए दिए गए थे. गिरोह की कार्यप्रणाली में आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी की नवीनतम उपलब्धियाँ पेन स्कैनर, माइक्रो ब्लुटूथ सुविधायुक्त इयरफोन एवम् वायरलेस इयरप्लग का उपयोग किया गया था. परीक्षार्थियों ने इन्हें अपने भीतरी वस्त्रों, कॉलरों तथा हेयरबैण्डों जैसी सुविधाजनक जगहों में छिपा लिया था. महिला परीक्षार्थियों के लिए खास वस्त्र सिलवाए गए थे एवम् इनके सिले जाने के पहले ये उपकरण उनमें लगा दिए गए थे. अपने कपड़ों में छिपाए गए कैमरों के जरिए प्रश्न-पत्रों की तस्वीर खींचकर उन्हें मोबाइल फोन के जरिए स्थानीय होटलों में अपने साथियों के पास भेजना, जो फिर इन तस्वीरों को अपने मोबाइल फोनों से पटना तथा हैदराबाद में स्थित अन्य विशेषज्ञों को भेजते थे. वहाँ से विशेषज्ञ उत्तरों को बेस कैम्प प्रेषित करते. फिर यहाँ से हाइ एण्ड ब्लूटूथ उपकरणों के जरिए परीक्षा भवन में परीक्षार्थियों को उत्तर लिखवाए जाते थे. जाहिर है कि इस अभियान के गिरोह के सरगना ने काफी धन और श्रम का निवेश योजनाबद्ध रूप में किया होगा. गिरोह आन्ध्रप्रदेश से हवाई मार्ग से चण्डीगढ़ आया था. उल्लेखनीय है कि यह परीक्षा पी.जी.आई., चण्डीगढ़ में उपलब्ध दो सौ से भी कम जगहों के लिए आयोजित हुई थी. चिकित्सा शास्त्र में स्नातकोत्तर शिक्षण के लिए अन्य अनेकों संस्थान उपलब्ध हैं , फिर भी यह अत्यन्त व्यय एवम् कष्टसाध्य सेंधमारी क्यों?

नव भारत के निर्माण का दायित्व जिन लोगों ने लिया था, उन्होंने और बातों के अलावे उच्च शिक्षा एवम् चिकित्सा के क्षेत्रों में उत्कृष्टता के केन्द्र (Centers of excellence) विकसित करने की योजना को रूप दिया था. इनमें चिकित्सा के क्षेत्र में नई दिल्ली में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) एवम् चण्डीगढ़ में स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा एवम् अनुसंधान संस्थान (पीजीआई) उल्लेखनीय हैं. तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में आईटीआई सहित इन संस्थानों को देश के शिक्षा जगत के प्रदर्शन वस्तु (showpiece) के रूप में प्रस्तुत करने का स्वप्न था उनका.

अनुमान करना सहज है कि यह घटना निश्चित रूप से ऐसी अकेली घटना नहीं है और पी.जी.आई., चण्डीगढ़ अकेला शिक्षण संस्थान नहीं है जो ऐसी जघन्य योजनाओं का लक्ष्य हो. देशभर में फैली विभिन्न संस्थाओं पर ग्रहण लगे होने की सम्भावना के स्पष्ट संकेत मिल रहे हैं. किसी राष्ट्र को, सैन्य आक्रमण किए बगैर, ध्वस्त करने का आसान तरीका उसकी शिक्षण संस्थाओं को खोखला बना देना होता है. नामांकन में की गई धाँधली उसी तरह पूरी व्यवस्था को तबाह कर देगी जैसे कतार में खड़े लोगों के एक छोर पर लगा हल्का-सा धक्का दूसरे छोर तक को गिरा देता है.

ऐसी अपेक्षा थी कि प्रौद्योगिकी की ये अद्‌भुत उपलब्धियाँ हमारी जीवन को अधिक समृद्ध एवम् उन्नत करेंगी, ये मानव सभ्यता की तिल-तिल कर गढ़ी संस्थाओं को खोखला बनाने के लिए उपयोगी होंगी, ऐसा तो नहीं सोचा गया था. इनसे उम्मीद थी कि हमारे विवेक को सशक्त होने के लिए अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराएँगी.

लेकिन आधुनिक विकास के साथ मनुष्य का मन बदलने लगा. विवेक की पहरेदारी में जीने की बन्दिश से छुटकारा मिल गया है. इच्छा का बहाव अपरिमित हो गया है, जिसमें सारे मूल्य-बोध विगलित होकर बहे जा रहे हैं. सामाजिक हाशिये से केन्द्र पर आए लोग भी अपने निकट अतीत से पल्ला झाड़ते हुए आगे बढ़ने की लालसा पालने लगे हैं. आगे बढ़ने की लिए कुछ भी करना श्रेय हो गया है. आज किसी भी कीमत पर सफलता पाना प्रेरक लक्ष्य है. ये शेक्सपियर को उद्धृत करते हुए कहते हैं, प्यार और जंग में सब कुछ सही है.

सवाल उठता है कि राष्ट्र के विवेक के पहरेदार, बुद्धिजीवी, राजनैतिक, सामाजिक एवम् सांस्कृतिक हस्तियाँ ऐसी घटनाओं से क्यों नहीं उद्वेलित होती हैं. मीडिया के चौपालों में, टेलिविज़न चैनलों की बहस में ये मुद्दा क्यों नहीं बन पातीं. हालाँकि राष्ट्र के जीवन को भ्रष्टाचारमुक्त करने की एक से अधिक मुहिम चलती रही हैं. इन मुहिमों का फोकस भ्रष्टाचार पर नहीं भ्रष्टाचारियों पर है. सिविल सोसायटी के बैनर तले अण्णा हजारे तथा बाबा रामदेव के नेतृत्व में जन्तर मन्तर एवम् रामलीला मैदान से इन मुहिमों का आग़ाज हुआ. फिर ये आन्दोलन उत्सव बन गए, जैसे गणेशपूजा गणेशोत्सव और दुर्गापूजा दुर्गोत्सव हो गए हैं.

सिविल सोसायटी से, टीम अण्णा से इण्डिया एगेंस्ट करप्शन से, टीम केजरीवाल में से किसी भी मुहिम के रैडर पर शिक्षण संस्थानों एवम् उत्कृष्टता के केन्द्रों की चर्चा नहीं है. संवाद माध्यम तो इन्हें समाचार की हैसियत भी नहीं देते. उपर्युक्त समाचार स्थानीय अखबारों में कुछ दिनों तक रहा. टेलिविज़न के किसी भी चैनल ने इस विसंगति को भ्रष्टाचार-विमर्श के लायक नहीं समझा, इनका पर्दाफाश करने के लिए कोई स्टिंग ऑपरेशन नहीं हुआ.

अशहर नज़्मी की बात फिर से याद आती है : *जिन्दगी ऐसे सवाल पूछती रही है जिनके जवाब नहीं हुआ करते.*

ganganand.jha@gmail.com

पत्रिका गर्भनाल

वर्ष-2, अंक-10 (इंटरनेट संस्करण : 73)
दिसम्बर 2012

सम्पादकीय सलाहकार
गंगानन्द झा

परामर्श मंडल
वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र
गूगल से साभार

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

>> 7
मुद्दे अचर्चित ही रह गए

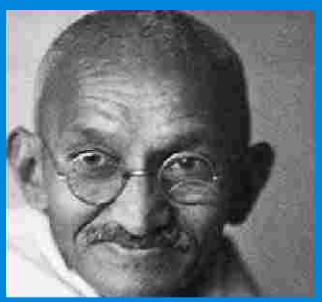

>> 11
महात्मा गाँधी की भाषा दृष्टि

>> 16
लड़कों में आत्मघाती प्रवृत्ति

>> 36
बूढ़ी

इस अंक में

मन की बात :	डॉ. मधुसूदन	4
रपट :	डॉ. अमरनाथ	7
आलेख :	यू.एन. खवाड़े	11
स्मरण :	डॉ. राघबेन्द्र झा	13
सामयिक :	कविता वर्मा	15
विचार :	देवेन्द्र सिंह	17
बातचीत :	आत्माराम शर्मा	18
नजरिया :	राजकिशोर	21
व्याख्या :	मनोज कुमार श्रीवास्तव	23
चिन्तन :	बृजेन्द्र श्रीवास्तव	28
वेद की कविता :	प्रभुदयाल मिश्र	29
गीता-सार :	अनिल विद्यालंकार	30
प्रश्नोत्तरी :	डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता	31
पंचतंत्र :		32
महाभारत :		34
अनुवाद :	गंगानन्द झा	36
कविता :	गोपाल बघेल 'मधु'	38
	डॉ. मृदुल जोशी	39
	पंकज कुमार अग्रवाल	41
	डॉ. सुरेन्द्र मीणा	46
	डॉ. सुधा गुप्ता	42
ग़ज़ल :	चंद्रभान भारद्वाज	43
	राणा प्रताप सिंह	44
	मनीष शुक्ल	45
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	46
कहानी :	नीरा त्यागी	47
व्यंग्य :	शशि रंजन मिश्र	49
खबर :		51
आपकी बात :		52

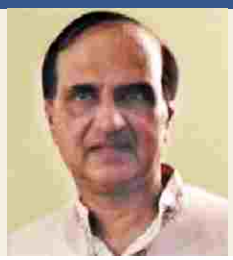

डॉ. मधुसूदन

तकनीकी (Engineering) में एम.एस. तथा पी.एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त की. भारतीय अमेरिकी शोधकर्ता के रूप में मशहूर. हिन्दी के प्रखर पुरस्कर्ता. संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती के अभ्यासी. अनेक संस्थाओं से जुड़े हैं. अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति (अमेरिका) के आजीवन सदस्य. सम्प्रति - अमेरिका की प्रतिष्ठित संस्था युनिवर्सिटी ऑफ मॅसाच्युसेटस, निर्माण अभियांत्रिकी में प्रोफेसर हैं.

सम्पर्क : mjhaveri@umassd.edu

मन की बात

हिन्दी, अंग्रेज़ी से टक्कर ले सकती है?

एक रविवारीय भोज के बाद, वार्तालाप में, भोजनोपरांत डकारते-डकारते, मेरे एक पश्चिम-प्रशंसक, (भारत-निंदक, उन्हें स्वीकार न होगा) वरिष्ठ मित्र ने प्रश्न उठाया कि 'क्या, तुम्हारी हिन्दी अंग्रेज़ी से टक्कर ले सकती है? सपने में भी नहीं.' यह सज्जन, हिन्दी के प्रति, हीन भाव रखनेवालों में से हैं. वे, उन के ज्ञान की अपेक्षा, आयु के कारण ही, आदर पाते रहते है.

पर आंखे मूंद कर 'साहेब वाक्यं प्रमाणं' वाला उनका यह पैंतरा और भारत के धर्म-भाषा-संस्कृति के प्रति हीन भावना-ग्रस्त-मानस मुझे रुचता नहीं. पर, ऐसी दुविधा में क्या करता? दुविधा इसलिए, कि यदि उनकी आयु का आदर करूं, तो असत्य की स्वीकृति समझी जाती है और अपना अलग मत व्यक्त करूं तो एक वरिष्ठ मित्र का अपमान माना जाता है. पर कुछ लोग स्वभाव से आरोप को ही प्रमाण मान कर चलते हैं. यह सज्जन भी बहुत पढ़े होते हुए भी, उसी वर्ग में आते थे. इसलिए उस समय उनका तर्क-हीन निर्णय और सर्वज्ञानी ठप्पामार पैंतरा देख मुझे कुछ निराशा-सी हुयी. ऐसा नहीं कि मेरे पास कुछ उत्तर नहीं था; पर इसलिए भी कि हिन्दी तो मेरे इस मित्र की भी भाषा थी, एक दृष्टि से मुझ से भी कुछ अधिक ही. पर उस समय उनका आक्रामक रूप, चुनौती भरा पैंतरा और 'सपने में भी नहीं' यह ब्रह्म वाक्य और आयु देख उन्हें उत्तर देना मैंने उचित नहीं माना. पर इस प्रसंग ने मेरी जिज्ञासा जगाई, अतः इस विषय पर कुछ पठन-पाठन-चिंतन-मनन करता रहा.

> *देवनागरी समस्त संसार की लिपियों में सबसे अधिक वैज्ञानिक है, सर्वोत्तम है और संसार के किसी भी कोने में प्रयुक्त वर्णमाला वैज्ञानिक रूप में विभाजित नहीं है, जैसी देवनागरी है.*

तो क्या हिन्दी अंग्रेज़ी से टक्कर ले सकती है?

निश्चित ले सकती है. और हिन्दी भारत के लिए कई गुना लाभदायी ही नहीं, शीघ्र-उन्नतिकारक भी है और भारत की अपनी भाषा है. मैं इस विषय का हरेक बिंदु न्यूनतम शब्दों में क्रमवार आपके सामने रखूंगा. केवल तर्क ही दूंगा, भावना नहीं जगाऊंगा. तर्क की भाषा सभी को स्वीकार करनी पड़ती है पर केवल भावनाएं आपको व्यक्तिक जीवन में जो चाहो करने की छूट देती हैं. और मैं चाहता हूं कि सभी भारतीय हिन्दी को अपनाएं; इसीलिए तर्क, केवल तर्क ही दूंगा.

आप निर्णय लें, मैं नहीं लूंगा. न्यूनतम समय लेकर मैं क्रमवार बिंदु आपके समक्ष रखता हूँ. इन बिंदुओं में भावुकता नहीं लाऊंगा. राष्ट्र भक्ति, भारतमाता, संस्कृति, इत्यादि शब्दों से परे केवल तर्क के आधार पर प्रतिपादन करूंगा. तर्क ही सर्व स्वीकृति के लिए उचित भी और आवश्यक भी है. इसलिए केवल तर्क-तर्क-और तर्क ही दूंगा.

हिन्दी और देवनागरी की वैज्ञानिकता

१. हर बिन्दु पर गुणांक, आप अपने अनुमान के अनुसार लगाने के लिए मुक्त हैं.

हमारी देवनागरी समस्त संसार की लिपियों में सबसे अधिक वैज्ञानिक है, सर्वोत्तम है और संसार के किसी भी कोने में प्रयुक्त वर्णमाला वैज्ञानिक रूप में विभाजित नहीं है, जैसी देवनागरी है. (गुणांक ५० अंग्रेजी २०)

> *जब आप सोचते हैं, मस्तिष्क में शब्द मालिका चलती है. लंबा शब्द अधिक समय लेता है, छोटा शब्द कम. तो जब अंग्रेज़ी के शब्द ही लंबे हैं, तो उसमें सोचने की गति धीमी होनी ही है. इसके अतिरिक्त वह परायी भाषा होने से और भी धीमी. इसका अर्थ हुआ कि अंग्रेज़ी में विचारों की गति हिन्दी की अपेक्षा धीमी है. मेरी दृष्टि में हिन्दी अंग्रेज़ी से दो गुना गतिमान है.*

२. आप अपना नाम हिन्दी में लिखिए. मैंने 'मधुसूदन' (५ अक्षर) लिखा. अब अंग्रेज़ी-रोमन में लिखिए madhusudan (१० अक्षर) अब, बताइए कि १० अक्षर लिखने में अधिक समय लगेगा या ५ अक्षर लिखने में? ऐसे आप किसी भी शब्द के विषय में कह सकते हैं. (गुणांक : हिन्दी - २०, अंग्रेजी - १०)

३. हिन्दी में वर्तनी होती है, पर अंग्रेज़ी की भांति स्पेलिंग नहीं होती. लिपि चिह्नों के नाम और ध्वनि अभिन्न (समरूप) है. जो बोला जाता है, उसी को लिखा जाता है. क लिखो, और क ही पढ़ो, गी लिखो और गी ही पढ़ो. जो लिखा जाता है, वही बोला जाता है. ध्वनि और लिपि मे सामंजस्य है. अंग्रेज़ी में ऐसा नहीं है. लिखते हैं S- T- A- T- I- O- N, और पढ़ते हैं स्टेशन. उसका उच्चारण भी आपको किसी से सुनना ही पड़ेगा. हमें तो देवनागरी का लाभ अंग्रेज़ी सीखते समय भी होता है, उच्चारण सीखने में भी, शब्द कोष के कोष्ठक मे देवनागरी में लिखा (स्टेशन) पढ़कर हम उच्चारण सीख गए. सोचो, कि केवल अंग्रेज़ी माध्यम में पढ़ने वाला इसे कैसे सीखेगा? चीनी तो और चकरा जाएगा. देखा देवनागरी का प्रताप (गुणांक : हिन्दी - ५०, अंग्रेजी - २५).

४. और, अंग्रेज़ी स्पेलिंग रटने में आप घंटों बिता देंगे. इस एक ही हिन्दी के गुण के आधार पर हिन्दी अतुलनीय हो जाती है. आज भी मुझे (एक प्रोफेसर को) अंग्रेज़ी शब्दों की स्पेलिंग डिक्शनरी खोलकर देखने में पर्याप्त समय व्यय करना पड़ता है. हिन्दी शब्द उच्चारण ठीक सुनने पर आप उसे लिख सकते हैं. कुछ वर्तनी का ध्यान देने पर आप सही सही लिख पाएंगे. (गुणांक : हिन्दी - १००, अंग्रेजी - १०).

हो सकता है, आपको १०० गुण अधिक लगे. पर आपके समय की बचत निश्चित कीमत रखती है. इससे भी अधिक यह गतिमान शीघ्रता का युग है. समय बचाने के लिये आप क्या नहीं करते? विमान, रेलगाड़ी, मोटर, बस सारा शीघ्रता के आधार पर चुना जाता है.

५. हिन्दी में एक ध्वनि का एक ही संकेत है. अंग्रेज़ी में एक ही ध्वनि के लिए अनेक संकेत काम में लिए जाते हैं. उदा. जैसे - 'क' के लिए, k (king), c (cat), ck (cuckoo) इत्यादि.

एक संकेत से अनेक ध्वनियाँ भी व्यक्त की जाती है. उदा. जैसे a से (१) अ (२), आ (३) ऍ, (४) ए, (५) इत्यादि. (गुणांक : हिन्दी - २५, अंग्रेजी - १०).

६. यही कारण था कि शालांत परीक्षा में हिन्दी (मराठी) माध्यम से हम लोग शीघ्रता से परीक्षा के प्रश्न हल कर लेते थे. जब हमारे अंग्रेज़ी माध्यम वाले मित्र विलंब से, उन्हीं प्रश्नों को अंग्रेज़ी माध्यम से जैसे-तैसे समय पूर्व पूरा करने में कठिनाई अनुभव करते थे. एक उदाहरण लेकर देखें. भूगोल का प्रश्न :

कोंकण में रेलमार्ग क्यों नहीं? (१२ अक्षर) और अंग्रेज़ी में होता था, Why there are no railways in Konkan? (२९ अक्षर).

उसका उत्तर लिखने में भी उन्हें अधिक लिखना पड़ता था. अक्षर भी अधिक, गति पराई भाषा होने से धीमी और अंग्रेज़ी में सोचना भी धीमे ही होता था. प्रश्न तो वही था पर माध्यम अलग था. और फिर शायद उन्हें स्पेलिंग का भी ध्यान रखना पड़ता था. पर परीक्षार्थी का प्रभाव निश्चित घट जाता होगा. जो उत्तर एक पन्ने में हम देते थे, वे दो पन्ने लेते थे. (गुणांक : हिन्दी - २५, अंग्रेजी - १०).

७. हिन्दी का लेखन संक्षेप में होता है.

उदाहरण : एक बार मेरी डिपार्टमेंट की बैठक में युनिवर्सिटी के अध्यक्ष बिना पूर्व सूचना आए थे, जब हमारी सहायिका (सेक्रेटरी) छुट्टी पर थी, तो कनिष्ठ प्राध्यापक होने के नाते मुझे उसके सविस्तार विवरण के लिए नियुक्त किया गया. इस बैठक में अध्यक्ष ने महत्वपूर्ण वचन दिए थे जिसका विवरण आवश्यक था.

मैंने कुछ सोच कर देवनागरी में अंग्रेजी उच्चारों को लिखा जो रोमन लिपि की अपेक्षा दो से ढाई गुना शीघ्र था. जहां The के बदले 'द' से काम चलता था, laboratory Expense के बदले 'लॅबोरॅटरी एक्सपेंस' इस प्रकार लिख कर नोटस तैयार किए, शब्दों के ऊपर की रेखा को भी तिलांजली दी. फिर घर जाकर, उसी को रोमन लिपि मे रूपांतरित कर के दूसरे दिन प्रस्तुत किया. विभाग के अन्य प्रोफेसरों के अचरज का पार ना था. पूछा, क्या मैं शॉर्टहैंड जानता हूं? मैंने उत्तर में हिन्दी देव नागरी की जानकारी दी. उनके नाम लिख कर थोड़ी प्राथमिक जानकारी दी. उन्हें हमारी नागरी लिपि कोई पहली बार समझा रहा था. अपेक्षा से कई अधिक प्रभावित हुए. एक आयलॅण्ड से आया प्रॉफेसर लिपि के वलयांकित सुंदर (सविनय, मेरे अक्षर सुंदर हैं) अक्षरों को देख कर बोला, यह तो सुपर-ह्यूमन लिपि है. (मन में सोचा, यह तो, अंग्रेज़ी में, इसे, देव (Divine) नागरी कह रहा है.) संसार भर में इतनी वैज्ञानिक लिपि और कोई नहीं. सारे पी.एच.डी. थे, पर उन्हें किसी ने हिन्दी-नागरी लिपि के बारे में ठीक बताया नहीं था. हिन्दी को उसके नाम से जानते थे, कुछ शब्द जैसे नमस्ते इत्यादि जानते थे. बंधुओ! लगा कि हम जिस ढेर पर बैठे हैं, कचरे कूडे का नहीं पर हीरों का ढेर है. हृदय गदगद हुआ. हिन्दी पर, गौरव प्रतीत हुआ. (गुणांक : हिन्दी - ५०, अंग्रेजी - २५).

८. व्यक्ति सोचता भी शब्दों द्वारा है. जब आप सोचते हैं, मस्तिष्क में शब्द मालिका चलती है. लंबा शब्द अधिक समय लेता है, छोटा शब्द कम.

तो जब अंग्रेज़ी के शब्द ही लंबे हैं, तो उसमें सोचने की गति धीमी होनी ही है. इसके अतिरिक्त वह परायी भाषा होने से और भी धीमी. इसका अर्थ हुआ कि अंग्रेज़ी में विचारों की गति हिन्दी की अपेक्षा धीमी है. मेरी दृष्टि में हिन्दी अंग्रेज़ी से दो गुना गतिमान है. (गुणांक : हिन्दी - ५०, अंग्रेजी - २५).

९. लेखन की गति का भी वही निष्कर्ष. जो आशय आप ६ पन्नों में व्यक्त करेंगे. अंग्रेज़ी में व्यक्त करने में आपको १० पन्ने लगते हैं. गीता का एक २ पंक्ति का श्लोक पन्ना भरकर अंग्रेज़ी में समझाना पडता है. (गुणांक : हिन्दी-५०, अंग्रेजी-२५).

१०. अर्थात, आप अंग्रेज़ी भाषा द्वारा शोध कर रहे हैं, तो जो काम ६ घंटों में हिन्दी में कर सकते थे उसे करने में आप को १० घंटे लग सकते हैं. अर्थ : आप शोध कार्य हिन्दी में करेंगे, तो जीवन भर में ६७ प्र.श. से ७५ प्र.श. अधिक शोधकार्य कर सकते हैं. (गुणांक : हिन्दी-५०, अंग्रेजी-२५).

११. इसके अतिरिक्त हर छात्र को हिन्दी माध्यम द्वारा आज की शालेय शिक्षा अवधि में ही, (११-१२ वर्ष में) MSc की उपाधि मिल पाएगी. अर्थात आज तक जितने लोग केवल शाला पढ़कर निकले हैं, वे सारे MSc से विभूषित होते. अंग्रेज़ी के कारण यह ज्ञान भंडार दुर्लक्षित हो गया है. (संदर्भ : बैसाखी पर दौड़ा दौड़ी, मुख्तार सिंह चौधरी) तो क्या भारत आगे नहीं बढ़ा होता? क्या भारत पिछड़ा होता? भारत आज के अनुपात में कम से कम ३ से ५ गुना आगे निकल गया होता? वैसे हम भारतीय बहुत बुद्धिमान है. यह जानकारी परदेश आकर पता चली. (गुणांक : हिन्दी-५००, अंग्रेजी-१००).

१२. किसी को अंग्रेज़ी, रूसी, चीनी, अरबी, फारसी ही क्यों झूलू, स्वाहिली, हवाइयन - संसार की कोई भी भाषा पढ़ने से किसने रोका है?

प्रश्न : कल यदि रूस आगे बढ़ा तो क्या तुरंत सभी को रूसी में शिक्षा देना प्रारंभ करेंगे? और परसों चीन आगे बढ़ा तो? और फ्रांस?

वास्तव में पड़ौस के चीन की भाषा पर्याप्त लोगों ने (सभी ने नहीं) सीखने की आवश्यकता है. उनकी सीमा पर की कार्यवाही जानने के लिए. मेरी जानकारी के अनुसार आजकल यह जानकारी हमें अमेरिका से प्राप्त होती है. या फिर आक्रमण होने के बाद. (अनुमान से लिखा है) अमेरिका में सारी परदेशी भाषाएं गुप्त शत्रुओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए पढ़ी जाती हैं.

जो घोड़ा प्रति घंटा ५० मील की गति से दौड़ता है, वह क्या २० मील प्रति घंटा दौड़ने वाले घोड़े से अधिक लाभदायी नहीं है?

पर भारतीय कस्तूरी मृग (हिरन) दौड़ रहा है, सुंगध का स्रोत ढूंढने. कोई तो उसे कहो, कहाँ भटक रहे हो, मेरे हिरन, तेरे पास ही सुगंध राशि है.

मुझे यह विश्वास नहीं होता कि ऐसी कॉमन सेन्स वाली जानकारी जो इस लेख में लिखी गयी है, हमारे नेतृत्व को नहीं थी. क्या किसी ने ऐसा सीधा सरल अध्ययन नहीं किया.

अब भी देर भले हुई है, शीघ्रता से चरण बढ़ाने चाहिये. तो क्या हिन्दी अंग्रेजी से टक्कर ले सकती है? आप बुद्धिमान हैं, आप ही निर्णय करें.■

"भारतीय कस्तूरी मृग (हिरन) दौड़ रहा है, सुंगध का स्रोत ढूंढने. कोई तो उसे कहो, कहाँ भटक रहे हो, मेरे हिरन, तेरे पास ही सुगंध राशि है."

डॉ. अमरनाथ

१९५४ में रामपुर बुजुर्ग, गोरखपुर में जन्म. गोरखपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. और पी-एच.डी की उपाधियां प्राप्त. एक दर्जन से अधिक आलोचना की पुस्तकें प्रकाशित. हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच सेतु निर्मित करने एवं भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से संचालित अपनी भाषा संस्था की पत्रिका 'भाषा विमर्श' का संपादन. संप्रति - कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर और भारतीय हिन्दी परिषद् के उपसभापति.

सम्पर्क : ईई-१६४ / ४०२, सेक्टर-२, साल्टलेक, कोलकाता-७०००९१ ई-मेल : amarnath.cu@gmail.com

महाकुंभ में मुख्य मुद्दे अचर्चित ही रह गए

ज्ञान के सबसे बड़े सर्च इंजन विकीपीडिया ने अपने नए सर्वेक्षण में दुनिया की सौ भाषाओं की सूची जारी की है. उसमें हिन्दी को चौथा स्थान दिया है. अब तक हिन्दी को दूसरे स्थान पर रखा जाता था. पहले स्थान पर चीनी थी. यह परिवर्तन इसलिए हुआ की सौ भाषाओं की इस सूची में भोजपुरी, अवधी, मैथिली, मगही, हरियाणवी और छत्तीसगढ़ी को स्वतंत्र भाषा का दर्जा दिया गया है. हिन्दी को खण्ड-खण्ड करके देखने की यह अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति है. आज भी यदि हम इनके सामने अंकित संख्याओं को हिन्दी बोलने वालों की संख्या में जोड़ दें तो फिर हिन्दी दूसरे स्थान पर पहुँच जाएगी. किन्तु यदि उक्त भाषाओं के अलावा राजस्थानी, ब्रजी, कुमायूनी-गढ़वाली, अंगिका, बुंदेली जैसी बोलियों को भी स्वतंत्र भाषाओं के रूप में गणना की गई तो निश्चित रूप से हिन्दी सातवें-आठवें स्थान पर पहुंच जाएगी और जिस तरह से हिन्दी की उक्त बोलिओं द्वारा संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग जोरों से की जा रही है यह परिघटना आगे के कुछ ही वर्षों में यथार्थ बन जाएगी.

हिन्दी के सामने आज यह सबसे बड़ी चुनौती है. हमें उम्मीद थी कि गाँधीजी की आरंभिक कर्मस्थली जोहान्सबर्ग में आयोजित होने वाले नवें विश्व हिन्दी सम्मेलन (२२ से २४ सितंबर २०१२) में यह मुद्दा बनेगा जो विचारकों को झकझोरेगा और बहस के लिए मजबूर करेगा, किन्तु तीन दिनों के उक्त सम्मेलन में इस मुद्दे को छुआ तक नहीं गया.

किसी विश्व हिन्दी सम्मेलन में शिरकत करने का मेरा यह पहला मौका था. विश्व हिन्दी सम्मेलन की आयोजन समिति के कुछ सदस्यों से मैंने पहले ही इस विषय पर चर्चा की थी ताकि यह मुद्दा वहां विचार का विषय बन सके. मैंने सम्मेलन से जुड़े विदेश मंत्रालय के दो प्रमुख अधिकारियों को विस्तार से लिखकर अपना प्रस्ताव एक हफ्ते पहले मेल से भेजा था, फोन से बात की थी. नौ सत्रों में विभाजित उक्त सम्मेलन का कायदे से एक सत्र इस ज्वलंत विषय पर होना चाहिए था. धूमिल की एक मशहूर कविता की पंक्ति है, 'जिसकी भी पूंछ उठाई मादा पाया'. सम्मेलन में विभिन्न विषयों पर आयोजित संगोष्ठियों की सदारत कर रहे अथवा बीज वक्तव्य दे रहे विद्वान लोग व्यवस्था की भंगिमा को परखने में इतने माहिर थे कि उनकी जबान से ऐसा कुछ भी नहीं निकला जो सरकार की भाषा नीति के तनिक भी प्रतिकूल हो. उन्हें पता था कि भोजपुरी आदि बोलियों को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने वाला बिल संसद के पिछले सत्र में ही पेश हो गया होता और ध्वनिमत से पास भी हो गया होता यदि पूरा सत्र कोयला घोटाले की भेंट न चढ़ गया होता.

मैं यह देखकर हैरान था कि एक सत्र में विशिष्ट अतिथि के रूप में बोल रहे माननीय मणिशंकर अय्यर ने जब कहा कि, भारत के लोकतंत्र में सिर्फ एक ही भाषा को खतरा है और वह है अंग्रेजी. तथा यदि हिन्दी का विकास चाहते हैं तो

> जोहान्सबर्ग का यह सम्मेलन हिन्दी के नाम पर पर्यटन और मौज-मस्ती का एक सुनहरा अवसर था. पूरे आयोजन में राजनेताओं और नौकरशाहों का वर्चस्व देखने को मिला.

उसे प्रोत्साहन देना बन्द कीजिए, वह अपना स्थान खुद बनाएगी. तो उसके लिए खूब तालियां बजायी गयीं.

आज हिन्दुस्तान एक ऐसा देश बन चुका है कि यहां की किसी भी भाषा में आप पारंगत हों और एक विदेशी भाषा अंग्रेजी न जानते हों तो आप को कोई नौकरी नहीं मिलेगी और दूसरी ओर इस देश की कोई भाषा न जानते हों मगर सिर्फ एक विदेशी भाषा अंग्रेजी जानते हों तो आप को यहाँ की कोई भी नौकरी ससम्मान मिल जाएगी. सन् २००९ की एक रिपोर्ट के अनुसार रैपीडेक्स इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स नामक किताब की दो करोड़ प्रतियां बिक चुकी थीं. यह किताब १२ भाषाओं में एक साथ छपती है. इस किताब से लोग अपने-अपने घरों में चुपचाप अंग्रेजी सीखते हैं. विगत कुछ वर्षों में हिन्दी माध्यम वाले तमाम स्कूल अंग्रेजी माध्यम में तब्दील हो चुके हैं. गली-गली अंग्रेजी स्पीकिंग कोर्स के कोचिंग सेन्टर चलते हैं और हमारे रहनुमाओं को इस देश में खतरा अंग्रेजी के लिए दिखायी दे रहा है. ऐसे ही लोगों के नेतृत्व में यह विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित हुआ था.

अय्यर साहब से पूछा जाना चाहिए कि हिन्दी के प्रोत्साहन से उसका नुकसान हो रहा है तो उसके नाम पर भारत से सात हजार किलोमीटर दूर जोहान्सबर्ग में जनता की कमायी के करोड़ों रुपये खर्च करने की क्या जरूरत थी? इस निर्णय में तो उनकी भी खास भूमिका रही होगी. पिछड़ी भाषा और पिछड़े लोगों को प्रोत्साहन दिए बगैर उनका विकास संभव है तो उनकी सरकार दलितों को आरक्षण क्यों दे रही है? यह तो वैसे ही है जैसे बकरी और बाघ को साथ छोड़ दें और उनके स्वस्थ विकास की कामना करें.

जोहान्सबर्ग का यह सम्मेलन हिन्दी के नाम पर पर्यटन और मौज-मस्ती का एक सुनहरा अवसर था. पूरे आयोजन में राजनेताओं और नौकरशाहों का वर्चस्व देखने को मिला. एक अनुमान के अनुसार पांच सौ से ज्यादा लोग वहां उपस्थित थे, जिनमें एक सौ स्थानीय एवं पचास के आसपास विदश से आने वाले प्रतिनिधि रहे होंगे. शेष लगभग साढ़े तीन सौ की संख्या भारतीयों की थी. इन भारतीयों में लगभग दो सौ सरकारी प्रतिनिधि थे, यानी उनकी सारी व्यवस्था सरकार की ओर से थी. उन्हें वहां के सर्वोत्तम पाँच सितारा होटलों में ठहराया गया, मनचाहा उम्दा खान-पान और परिवहन की व्यवस्था की गयी तथा वापस लौटते वक्त नियमानुसार डॉलर में डी.ए. भी दिया गया. बाकी लोग व्यवस्थापकों की निगाह में प्राइवेट डेलीगेट थे. जिन संस्थाओं ने उन्हें भेजा था- खर्च उन्हें ही वहन करना था. पूरा खर्च वहन करने वाली संस्थाएं कम ही होंगी. ऐसे लोगों को बोलने का अवसर भी कम ही दिया गया. उन्हें पहले ही बता दिया गया था कि उन्हें अपने पर्चे पढ़ने के लिए अधिकतम सात मिनट मिलेंगे वह भी एक साथ चलने

> *गली-गली अंग्रेजी स्पीकिंग कोर्स के कोचिंग सेन्टर चलते हैं और हमारे रहनुमाओं को इस देश में खतरा अंग्रेजी के लिए दिखायी दे रहा है. ऐसे ही लोगों के नेतृत्व में यह विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित हुआ था.*

वाले समानान्तर सत्रों में से किसी एक में. मैंने देखा कई महत्वपूर्ण लेखक भी सम्मेलन में मौजूद थे किन्तु उनकी वहां उपस्थिति की नोटिस भी नहीं ली गयी.

विश्व हिन्दी सम्मेलन के इस अवसर पर हिन्दी अनुभाग, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार की ओर से एक विशेषांक भी छपा जिसका संपादन रवीन्द्र कालिया ने किया है. ४५३ पृष्ठों के इस अंक का शीर्षक है, भाषा की अस्मिता और हिन्दी का वैश्विरक संदर्भ. यही सम्मेलन का केन्द्रीय विषय भी है. इसके अलावा महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा की एक टीम की ओर से विश्व हिन्दी नाम से एक सम्मेलन बुलेटिन भी तीनों दिन छपती रही.

२२ सितंबर को निर्धारित समय पर गाँधी ग्राम (सैंडटन कन्वेन्शन सेन्टर) स्थित नेल्सन मंडेला सभागार में सम्मेलन का उद्घाटन हुआ. उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता भारत की विदेश राज्यमंत्री श्रीमती प्रनीत कौर ने की. दक्षिण अफ्रीका में भारतीय उच्चायुक्त वीरेन्द्र गुप्ता ने स्वागत भाषण दिया. इसके बाद भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा प्रकाशित 'गगनांचल' तथा विदेश मंत्रालय द्वारा प्रकाशित सम्मेलन विशेषांकों का विमोचन किया गया. विश्व हिन्दी सम्मेलन की संचालन समिति के अध्यक्ष व सांसद सत्यब्रत चतुर्वेदी, दक्षिण अफ्रीका के वित्त मंत्री प्रवीन गोवर्धन, मारीशस के कला व संस्कृति मंत्री मुकेश्वर चुनी, दक्षिण अफ्रीका स्थित हिन्दी शिक्षा संघ की अध्यक्षा मालती रामबली तथा महात्मा गांधी की प्रपौत्री इला गाँधी ने भी समारोह को संबोधित किया. इला गांधी (जिन्हें गांधीवादी विचारधारा की पोषक कहा गया) ने अपना भाषण अंग्रेजी में दिया. उनके भाषण से हमें क्या संदेश मिला?

उद्घाटन समारोह के बाद सत्य मंडप में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा तथा नेशनल बुक ट्रस्ट की ओर से लगायी गयी प्रदर्शनियों का भी उद्घाटन हुआ. इसी दिन नेल्सन मंडेला सभागार के बाहर दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी का अलख जगाने वाले पंडित नरदेव नरोत्तम वेदालंकार की प्रतिमा का अनावरण भारत की विदेश राज्यमंत्री प्रनीत कौर तथा

दक्षिण अफ्रीका के वित्त मंत्री प्रवीन गोवर्धन द्वारा किया गया.

दूसरा दिन शैक्षिक सत्रों का था. भोजन के पूर्व और पश्चात कुल नौ समानान्तर सत्र शान्ति, सत्य, अहिंसा, नीति और न्याय मंडपों में चले. इन सत्रों के विषय थे- महात्मा गांधी की भाषा दृष्टि और वर्तमान का संदर्भ, हिन्दी : फिल्म, रंगमंच और मंच की भाषा, सूचना प्रौद्योगिकी : देवनागरी लिपि और हिन्दी का सामर्थ्य, लोक तंत्र और मीडिया की भाषा के रूप में हिन्दी, विदेश में भारत : भारतीय ग्रंथों की भूमिका, ज्ञान विज्ञान और रोजगार की भाषा के रूप में हिन्दी, हिन्दी के विकास में विदेशी/प्रवासी लेखकों की भूमिका, हिन्दी के प्रसार में अनुवाद की भूमिका तथा दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी शिक्षा : युवाओं का योगदान. इन सत्रों में प्रायः सभी प्रतिनिधियों ने किसी न किसी रूप में अपनी भागीदारी दर्ज करायी. इस दिन का संपूर्ण आयोजन वस्तुतः प्रतिनिधियों द्वारा अपनी-अपनी उपस्थिति दर्ज कराने की होड़ का था. जिन लोगों ने येन-केन-प्रकारेण सत्ता के गलियारे तक अपनी पहुंच बना ली थी उन्हें मंच की तरफ की कुर्सियां नसीब हो गयीं थीं और उन्हें कुछ ज्यादा बोलने का भी वक्त मिल गया था, किन्तु, दिनभर के उस समूचे विमर्श का निष्कर्ष क्या निकला, यह मेरे जैसे लोगों की समझ में नहीं आया.

आखिरी दिन हिन्दी भाषा के विकास में अपना योगदान देने वाले विद्वानों को सम्मानित किया गया. इनके नाम हैं, डॉ. वेदप्रकाश बटुक (अमेरिका), डॉ. पीटर गेरार्ड फ्रेडलांडर (आस्ट्रेलिया), डॉ. सर्गेई सेरेब्रियानी (रूस), डॉ. डगमार मारकोवा (चेक गणराज्य), मार्को जोली (इटली), प्रो. लिऊ अन्वू (चीन), डॉ. सरिता बूधू, सत्यदेव टेंगर (मारिशस), बमरूंग खाम (थाईलैंड), प्रो. उपुल रंजीत हेवातानागामेज (श्रीलंका), वान्या जार्जिया गनचेवा (बुल्गारिया), जबुल्लाह फीकरी (अफगानिस्तान), भोलानाथ नारायण (सूरीनाम), कैटरीना बालेरीवा दोवबन्या (यूक्रेन), डॉ. कृष्ण कुमार, विजय राणा (यू.के.), प्रो. इंदुप्रकाश पाण्डेय, डॉ. बारबरा लॉटर्ज (जर्मनी), प्रो. तिकेदी इशीदा, डॉ. तोमोकोकिकुची (जापान), प्रो. रामभजन सीताराम (दक्षिण अफ्रीका) तथा भारत के प्रो. एस. शेषरत्नम्, बालकवि बैरागी, मधुकर उपाध्याय, हिमांशु जोशी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, कैलाश चंद्र पंत, एम. पियोंग तेजमन जमीर, प्रो. सी.ई. जीनी, डॉ. राम गोपाल शर्मा दिनेश, प्रो. जाबिर हुसेन, प्रो. मधुसूदन त्रिपाठी, ज्ञान प्रकाश चतुर्वेदी, प्रो. बि. वाय ललिताम्बा, उषा गांगुली, डॉ. के. बनजा, डॉ. गिरिजा शंकर त्रिवेदी, हरिवंश, और डॉ. वाय. लक्ष्मी प्रसाद शामिल हैं.

> सम्मेलन को लेकर आयोजकों के दिमाग में पहले से कोई परिकल्पना नहीं थी. इसीलिए अन्तिम दिन समापन के अवसर पर जो संकल्प लिए गए उनसे किसी नई उपलब्धि की उम्मीद नहीं बन सकी.

इस सम्मेलन को लेकर आयोजकों के दिमाग में पहले से कोई परिकल्पना नहीं थी. इसीलिए अन्तिम दिन समापन के अवसर पर जो संकल्प लिए गए उनसे किसी नई उपलब्धि की उम्मीद नहीं बन सकी. दरअसल, वर्धा स्थित महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय तथा मारीशस का विश्व हिन्दी सचिवालय जैसी महत्वपूर्ण संस्थाएं पूर्व के विश्व हिन्दी सम्मेलनों में लिए गए निर्णयों की देन हैं. इस तरह का कोई महत्वपूर्ण संकल्प इस बार नहीं लिया गया. इस बार फिर हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने की मांग की गयी और उसके लिए समयबद्ध कार्यवाई सुनिश्चित किए जाने का संकल्प लिया गया किन्तु विश्व में खिसकती जा रही हिन्दी भाषियों की संख्या को लेकर किसी तरह की चर्चा नहीं हुई जो संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के लिए सबसे प्रमुख आधार है. हां, यह जरूर तय हुआ कि दो विश्व हिन्दी सम्मेलनों के बीच यथासंभव अधिकतम तीन वर्ष का अंतराल हो. इसके साथ ही अगला विश्व हिन्दी सम्मेलन भारत में आयोजित किए जाने का निर्णय लिया गया.

मेरे लिए सम्मेलन का सबसे आकर्षक क्षण था लेखक, निर्देशक, गायक, संगीतकार व अभिनेता शेखर सेन की एकल नाट्य प्रस्तुति. शेखर सेन ने ३८ पात्रों को अभिनीत किया और कबीर की चुनिंदा रचनाओं को ४३ रागों में संगीतबद्ध किया. कबीर के जीवन प्रसंगों को उनकी रमैनियों, साखियों और दोहों से जोड़ते हुए उन्होंने मंच पर कबीर को साकार कर दिया. यह एक अद्‌भुत अनुभव था.

दो-चार बातें जोहान्सबर्ग की. यह शहर दक्षिण अफ्रीका की आर्थिक राजधानी है. नीची-ऊंची पहाड़ियों पर बसा हुआ बड़ा ही खूबसूरत. साफ सुथरी और चौड़ी सड़कें. खूबसूरत भवन. सड़कों पर पैदल चलने वाले मनुष्य विरल और गाड़ियों की भरमार. पहली नजर में हम भारतीयों को उसकी सम्पन्नता मोह लेगी. किन्तु एअरपोर्ट से बाहर निकलने के बाद हमें लेने जो अधिकारी आये थे उन्होंने सबसे पहले हमें सचेत किया कि हम अपने होटलों से अकेले कभी बाहर न जाएं और दिन डूबने के पहले ही होटल लौट आएं क्योंकि

> डॉ. इकबाल का मशहूर तराना 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी', आने वाली हमारी अगली पीढ़ी गा पाएगी? अब तक यह इसलिये बची है क्योंकि इसे बचाने वाले लोग मौजूद थे, जब बचाने वाले ही बदल जायेंगे तो हमारी हस्ती कैसे बची रह पाएगी?

उनके शब्दों में यह हाई क्राइम एरिया है. मैं इस सवाल का उत्तर ढूंढने में मशगूल हो गया कि इतने सम्पन्न इलाके में इतना अपराध क्यों?

मुझे एक-दो दिन बाद उसके जवाब मिल गए. वास्तव में दक्षिण अफ्रीका में ७९.४ प्र.श. अफ्रीकी मूल के लोग हैं. ९.२ प्र.श. श्वेत. यहां ३ प्र.श. एशियाई/भारतीय मूल के लोग भी रहते हैं. यहां तीन बड़े शहर हैं डर्बन, केप टाउन और जोहान्सबर्ग. भारतीय मूल के लोग डर्बन में ही अधिक हैं. गाँधीजी यहाँ बीस साल रहे, यहां से इंडियन ओपिनियन नामक पत्र निकाला. यहां के लोग कहते हैं कि भारत ने एक बैरिस्टर मोहनदास को यहां भेजा और हमने उन्हें महात्मा बनाकर वापस किया. नेल्सन मंडेला के पथ प्रदर्शक यहाँ गाँधी ही थे.

जोहान्सबर्ग सोने और हीरे की खानों के लिए जाना जाता है. कुछ सौ वर्ष पहले इन्हीं सोनों और हीरों की तलाश में गोरे यहां आए. यहां की खानों में यहीं के लोगों से काम कराया. भीषण अत्याचार किए और सोने-हीरे उत्पादित करके खुद अमीर बन गए. जोहान्सबर्ग में जाने के बाद यहां के एपार्थेड म्युजियम जरूर देखना चाहिए. इस म्युजियम में रंग भेद की हकीकत बयान की गयी है. यद्यपि नेल्सन मँडेला के नेतृत्व में लड़ी गयी दशकों की असाधारण लड़ाई में यहाँ रंगभेद तो कम हो गया है और यहाँ एक लोकतंत्र भी स्थापित है किन्तु आज भी यहां की अस्सी प्रतिशत संपत्ति पर १० प्र.श. लोगों, खासकर गोरों का कब्जा है. लैण्ड रिफार्म नहीं हो सका है. आज भी यहां के संविधान के अनुसार किसी की जमीन लेने पर सरकार को उस समय के बाजार के रेट से मुआवजा चुकता करना पड़ेगा. ऐसी दशा में इस कानून के रहते हुए लैण्ड रिफार्म हो पाना मुश्किल है. यहां के मूल निवासियों को मताधिकार १९९४ में प्राप्त हुआ.

उपर्युक्त कारणों से यहां मुख्यतः दो वर्ग हैं, उच्च और निम्न. या तो लोग बहुत अमीर हैं या बहुत गरीब. मध्य वर्ग यहां बहुत कम है. ऐसी दशा में गरीब लोग मौका पाते ही लूट और छिनताई करते हैं. दिल्ली से आयी एक प्रतिनिधि का बैग सेमीनार स्थल से दो स्थानीय उचक्के छीन ले गए. एक व्यक्ति अपनी गाड़ी में बैठे-बैठे ही सैंडटन सिटी के पास हाथ बाहर निकालकर फोटो ले रहे थे कि एक उचक्का आया और उनका कैमरा छीन ले गया. इतनी सतर्कता के बावजूद लौटने तक सात डेलीगेट लुट चुके थे. आखिर उनके जीने का दूसरा रास्ता क्या है? अमीरों के जीवन स्तर का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि हमें अपने लिए पीने का पानी होटल से मंगाना पड़ता था और डेढ़ लीटर के एक बोतल पानी का हमें ३३ रैण्ड यानी २३२ रुपये देने पड़ते थे. हां शराब सर्वत्र सुलभ थी. सस्ती रही होगी.

मणिशंकर अय्यर के भाषण से मुझे लगा कि हमारा देश भी बड़ी तेजी से दक्षिण अफ्रीका के रास्ते बढ़ रहा है. दुनिया के सबसे गरीब देशों की लिस्ट में शामिल इस देश में सबसे ज्यादा अमीर पैदा होने लगे हैं.

कन्वेंसन सेन्टर के पास ही मंडेला स्क्वायर था. यहां का संभवतः सबसे बड़ा बाजार भी यहीं है. दुकानें सजी हुई मगर संभवतः मंहगाई के कारण लोग खरीदारी करते कम दिखे. यहां एक किताबों की बहुत बड़ी दुकान मिली. किताबें ही किताबें. अंग्रेजी की कई अच्छी किताबें यहां थीं. खरीदने की इच्छा भी हुई किन्तु रैण्ड में छपे दाम को रुपए में कनवर्ट करके देखता तो हिम्मत छूट जाती. वही किताबें अपने देश में एक चौथाई दाम में मिल जाती. मैं उस दुकान में वहां की स्थानीय भाषाओं की किताबें ढूंढता रहा. हमारे विभागीय सहयोगी आदरणीय शंभुनाथजी भी साथ थे. उन्होंने भी देखा. स्थानीय भाषा की एक भी किताब नहीं दिखी. यानी, यहां के अस्सी प्रतिशत लोगों की अफ्रीकन भाषा और उसके साहित्य को अंग्रेजी पूरी तरह निगल चुकी है. अफ्रीकनों का साहित्य और उनकी संस्कृति अब वहां बहुत कम बची है. उम्मीद है कुछ दिन बाद उसे देखने के लिए भी पर्यटकों को म्युजियम ही जाना पड़ेगा. फिलहाल, वहां प्रिटोरिया स्थित भारतीय उच्चायुक्त के आवास पर सायं भोज का आयोजन था. उक्त अवसर पर हम आगंतुकों के सम्मान में आयोजित वहां की एक जन जाति द्वारा प्रस्तुत जुलू नृत्य जरूर देखा. ऐसा लगता है कि वहां की संस्कृति और साहित्य अब वहां के गरीब और पिछड़े लोगों की जबान और जीवन शैली में ही शेष बचा है. मैं सोचने लगा कि क्या डॉ. इकबाल का मशहूर तराना 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी', आने वाली हमारी अगली पीढ़ी गा पाएगी? अब तक यह इसलिये बची है क्योंकि इसे बचाने वाले लोग मौजूद थे, जब बचाने वाले ही बदल जायेंगे तो हमारी हस्ती कैसे बची रह पाएगी? जिस तरह भारत बदल कर तेजी से इंडिया बन रहा है हमारे भीतर अपने भविष्य को लेकर डर पैदा हो गया है. ■

यू.एन. खवाड़े
सचिव, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस)
ए-२४-२५, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर-६२, नोएडा, उत्तर प्रदेश
ईमेल : unkhaware@gmail.com

आलेख

महात्मा गाँधी की भाषा दृष्टि

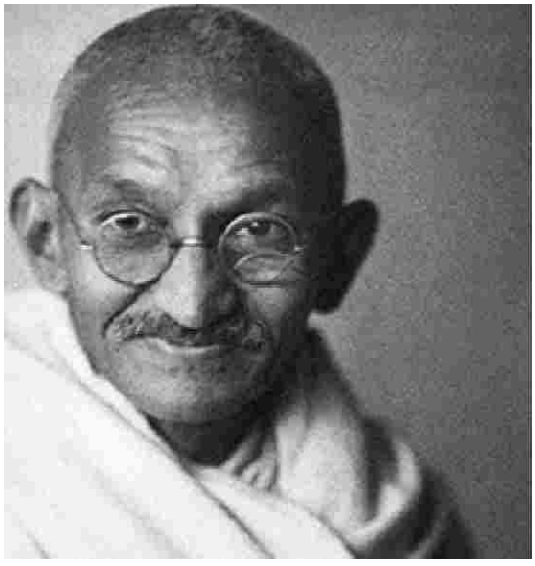

महात्मा गाँधी की भाषा दृष्टि समझने के लिए भारत की भाषा दृष्टि समझनी होगी. दक्षिण अफ्रीका की धरती से प्रशिक्षित होकर जब वे अपने देश आए और वहाँ उन्होंने अपने देश को आजाद करने का निश्चय किया उस निश्चय की बुनियाद भाषा ही थी. वे यह अच्छी तरह जानते थे कि किसी भी आंदोलन को चलाने और स्वतंत्रता प्राप्ति जैसे विचार को परिणाम में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक है कि देश की सभी जनता स्त्री-पुरुष, शिक्षित-अशिक्षित, वृद्ध-नवयुवक, विभिन्न धर्मों की, विभिन्न संस्कृतियों की, भौगोलिक परिस्थितियों की जनता से संवाद स्थापित करना. ऐसा संवाद जिसका अर्थ सभी के लिए एक हो और जिसमें अस्पष्टता की कोई गुंजाइश न हो. प्रमाण देने की कोई आवश्यकता नहीं कि गांधीजी के नेतृत्व में आयोजित लगभग सभी कांग्रेस अधिवेशनों में भाषा एक प्रमुख विषय रही. जैसा कि ऊपर कहा गया कि गांधीजी की भाषा दृष्टि भारत की भाषा दृष्टि है. यहाँ यह रेखांकित करना आवश्यक होगा कि गांधी जिस भाषा को देश की भाषा मानते थे वह कोई उनका आविष्कार नहीं थी. यह भाषा अंग्रेजों के भारत आने से पहले ही भारत के बहुसंख्यक लोगों की आम बोलचाल की भाषा थी. इसका नाम चाहे हिंदी, हिंदवी, रेख्ता देहलवी, उर्दू या हिन्दुस्तानी जो कुछ भी रहा हो, यह हिंदी ही थी. ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली आदि बोलियाँ एक-दूसरे से इतनी अलग नहीं थीं कि एक अवधी भाषी ब्रजभाषा नहीं समझ सके या एक मैथिल भाषा-भाषी ब्रजभाषा या अवधी न समझ सकें. यही नहीं चैतन्य के कीर्तन और असम के शंकर देव के नाम गीतों में भी यही विशेषता झलकती है. भक्तिकाल में, जो कि बताया जाता है कि दक्षिण से आया और पूरे भारत में फैलते हुए गुजरात तक पहुँचा, भाषा का स्वर्णिम काल था. रसखान, कबीर, मीरा, तुलसी, जायसी आदि अनेक कवियों की रचनाओं में जो साम्यता दिखाई देती है उसकी कुछ बानगी द्रष्टव्य है :

तुलसी - 'दीन दयाल बिरिदु संभारी, हरहु नाथ मन संकट भारी.'

सूर - 'मैया, मैं नहीं माखन खायो.'

मीरा - 'मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई.'

रसखान - 'रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय.'

विद्यापति - 'करवन हरब दुःख मोर हे भोलानाथ.'

गांधीजी की इसी भाषा चेतना को गणेश शंकर विद्यार्थी से इस रूप में प्रस्तुत किया - 'मुझे देश की आज़ादी और भाषा की आज़ादी में से किसी एक को चुनना पड़े तो मैं निःसंकोच भाषा की आज़ादी को पहले चुनूँगा, क्योंकि मैं फायदे में रहूँगा. देश की आज़ादी के बावजूद भाषा की गुलामी रह सकती है लेकिन अगर भाषा आज़ाद हुई तो देश गुलाम नहीं रह सकता.'

> *गांधी जिस भाषा को देश की भाषा मानते थे वह कोई उनका आविष्कार नहीं थी. यह भाषा अंग्रेजों के भारत आने से पहले ही भारत के बहुसंख्यक लोगों की आम बोलचाल की भाषा थी.*

गांधीजी ने भाषा के कई आयामों पर न केवल अपनी दृष्टि रखी बल्कि उसे जीवन में उतारने का प्रयास भी किया इसलिए उन्होंने कई भाषाएँ सीखी और लोगों को हमेशा अपनी भाषा से प्रेम करते हुए अन्य भाषाएँ सीखने की सलाह दी. बहुसंख्यक जनता द्वारा बोले जाने के कारण हिंदी दक्षिण भारतीयों द्वारा सीखी जाए. साथ ही हिंदी भाषियों को भी दक्षिण की कोई भाषा सीखनी चाहिए. इस संबंध में उस समय के मद्रास और आज के चेन्नई में उनके द्वारा चलाए गए हिंदी शिक्षण संस्थान ने विस्मयकारी योगदान दिया.

गांधीजी के मत से भारत के राजकाज की भाषा दुरूह और कठिन नहीं होनी चाहिए. अंग्रेजी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती, ऐसा उन्होंने इसे चार कसौटियों पर कसने के बाद कहा था :

१. जनता के लिए भाषा सरल होनी चाहिए.

२. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार होना चाहिए.

३. राष्ट्र के लिए भाषा सरल व आसान होनी चाहिए.

४. भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्प स्थाई स्थिति पर जोर देना चाहिए.

यदि हिंदी दुरूह और कठिन हुई तो वह भी उक्त शर्तों को पूरा नहीं कर पाएगी इसलिए उन्होंने हिंदुस्तानी हिंदी, जिसमें संस्कृत के तद्भव शब्दों के साथ-साथ, फारसी, अरबी एवं अन्य देसी भाषाओं के लोकप्रिय एवं सहज शब्दावली से युक्त भाषा अपनाने पर जोर दिया.

यह बात अलग है कि गांधीजी के इस मख्सूस ख्वाहिश को दरकिनार कर दिया गया कि फारसी और देवनागरी, दोनों ही लिपियों में लिखी जाने वाली हिंदी को ही धर्मनिरपेक्ष भारत की सरकारी जुबान बनाया जाए. लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि गांधीजी अंग्रेजी से घृणा करते थे. गांधीजी का स्पष्ट मत था कि एक व्यक्ति का प्रांत के साथ संवाद प्रांत की भाषा में, देश के साथ संवाद राष्ट्रभाषा में और विश्व के साथ संवाद अंग्रेजी में करना चाहिए. साथ ही वे यह भी बता गए कि भारत अपनी बात तब तक नहीं बोल सकेगा जब तक वह अंग्रेजी में शिक्षा ग्रहण करता और अंग्रेजी में ही काम करता है. सन १९२० में जब गांधीजी की प्रेरणा से राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई, उस समय कई विषयों के पाठ्यग्रंथ हिंदी में उपलब्ध नहीं थे. गांधीजी ने कहा, 'शिक्षक बिना ग्रंथ के पढ़ाएँ' जब तक अंग्रेजी की नाव हमारे घाट पर बंधी है, हम अपनी भाषाओं की उपेक्षा करते ही जाएँगे. भारत के आध्यात्मिक उद्धार का रास्ता यह है कि अंग्रेजी का अवलंब छोड़कर हम अपनी भाषाओं में कूद पड़ें. (दिनकर)

यह दुर्भाग्य ही है कि गांधी जी एवं उनके महान अनुयायियों जैसे विनोबा, भावे, काका कालेलकर, राजेन्द्र प्रसाद, नेहरू आदि के प्रयत्नों को कुछ लोगों ने धर्म की आड़ में काफी नुकसान पहुँचाया. हिंदी और उर्दू दो लिपियों में बोली जाने वाली भाषा थी - एक ही भाषा पर उसको दो अलग-अलग भाषाओं के रूप में प्रमाणित करने की पुरजोर कोशिश की गई. कुछ हिंदू लेखकों ने संस्कृत शब्द ढूँसने शुरू किए और कुछ मुस्लिम लेखकों ने उनके स्थान पर फारसी या अरबी शब्द. अमीर खुसरो, इकबाल, प्रेमचंद की भाषा की शक्ल बदलने का प्रयास किया गया जिसकी गूंज संविधान सभा में भी सुनाई पड़ी. गांधीजी इस बारे में बिलकुल आश्वस्त थे कि हिंदी उर्दू ही हिंदुस्तानी हो सकती है. राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन के साथ उनकी नोंक-झोंक के बारे में सभी परिचित हैं.

शुरू में गांधीजी यह समझते थे कि यदि भाषा के आधार पर प्रांत बने तो भाषा का बहुत विकास होगा लेकिन देश के आजाद होते-होते मजहबी उन्माद के फलस्वरूप विभाजन की त्रासदी झेलते समय गांधी और नेहरू को अपने विचार बदलने पड़े.

गांधीजी की भाषा दृष्टि का एक और पक्ष था - प्रांतों के पुनर्गठन में भाषा की भूमिका. शुरू में गांधीजी यह समझते थे कि यदि भाषा के आधार पर प्रांत बने तो भाषा का बहुत विकास होगा लेकिन देश के आजाद होते-होते मजहबी उन्माद के फलस्वरूप विभाजन की त्रासदी झेलते समय गांधी और नेहरू को अपने विचार बदलने पड़े, लेकिन तब तक देर हो चुकी थी. गांधीजी के निधन के बाद नेहरूजी इसे जेवीपी (जवाहरलाल नेहरू, कृपलानी एवं पट्टाभिसीता रमैया) कमेटी बनाकर इसे कुछ दिनों तक ही टाल सके. अंततोगत्वा भाषा आधारित प्रांत बने और बनते चले गए.

यद्यपि गाँधीजी भाषाविद नहीं थे, परन्तु युगदृष्टा के रूप में भाषा के महत्व से वे भली-भाँति परिचित थे. आजादी के आंदोलन के दौरान भी उन्होंने भाषा के मानकीकरण, लिपियों के सरलीकरण, व्याकरण, शब्दकोष आदि पक्षों पर बहुत सारे प्रयास किए. प्रेमचंद, शमशेर बहादुर सिंह आदि अनेक कवियों और लेखकों पर उनकी स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है. शमशेर सिंह का एक शेर अर्ज है :

जहाँ में अब तो जितने रोज अपना जीना होना है.
तुम्हारी चोटें होनी हैं हमारा सीना होना है.

आज अधिकांश लोग यह मानने लगे हैं कि हिंदी और उर्दू के मेल से जो भाषा बनती है उससे बेहतर शायद ही कोई भाषा हो जैसा कि गांधी जी ने कहा था - "Urdu diction is used by Muslims in writing. Hindi diction is used by Sanskrit Pundits. Hindustani is the sweet mingling of the two."

और ऐसा हो भी क्यूँ न ?

चमन में इखलाते रंग ओ बू से बनती है.
हमीं हम हैं तो क्या हम हैं, तुम्हीं तुम हो तो क्या तुम हो. ■

डॉ. राघबेन्द्र झा

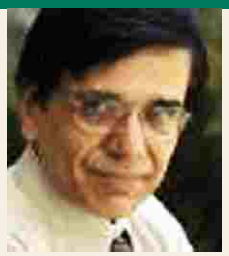

सेंट स्टीफन कॉलेज से बी.ए. (ऑनर्स) और दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स से एम.ए. किया. उन्होंने कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यूयार्क से अर्थशास्त्र में एम.फिल और पीएच.डी. की डिग्रियाँ हासिल कीं. ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी आने के पहले आपने अमेरिका में कोलंबिया यूनिवर्सिटी और विलियम्स कॉलेज में अर्थशास्त्र के अलावा कनाडा में क्वीन यूनिवर्सिटी और इंग्लैंड वारविक यूनिवर्सिटी में भी पढ़ाया है. भारत में उन्होंने दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स, आई.आई.एम. बेंगलौर और इंदिरा गाँधी आर्थिक विकास संस्थान में भी पढ़ाया है. उन्होंने २७ पुस्तकों को लिखा और सम्पादन किया है. अर्थशास्त्र के विशिष्ट अंतरराष्ट्रीय जर्नलों में १५० से अधिक वैज्ञानिक लेखों का योगदान किया. दुनिया के कई अखबारों में उनके लेख छप चुके हैं और उन्हें अर्थशास्त्र के कई सम्मान प्राप्त हुए हैं. सम्प्रति - ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी, कैनबरा, ऑस्ट्रेलिया में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर और वहाँ के ऑस्ट्रेलिया साउथ एशिया रिसर्च सेंटर के एक्ज्युकेटिव डायरेक्टर हैं. सम्पर्क : r.jha@anu.edu.au

राजेन बाबू की कुछ यादें

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद एक महान देशभक्त, विद्वान, राजनीतिज्ञ और स्वतंत्रता सेनानी थे. यहाँ तक कि प्रसिद्ध इतिहासकार और महात्मा गाँधी के पोते (और श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के नाती) प्रोफेसर राजमोहन गाँधी ने अपनी पुस्तक (Patel, A Life, Navjivan Press, Ahmedabad) में राजेन बाबू और वल्लभभाई पटेल को कांग्रेस पार्टी के कुछ उन चुने हुए लोगों की श्रेणी में रखा है जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के समय अपने निजी जीवन को करीब-करीब ताक पर रख दिया था और केवल स्वतंत्रता संग्राम के लिए ही काम करते थे. १९६२ में सेवानिवृत होकर डॉक्टर प्रसाद पटना आ गए और सदाकत आश्रम स्थित अपने घर में अपनी पत्नी के साथ रहने लगे. गंगा के किनारे पर बनाया गया सदाकत आश्रम का एक भाग बिहार कांग्रेस पार्टी का मुख्यालय था. इस कार्यालय के ठीक पीछे और कुछ दूरी पर डॉक्टर प्रसाद का घर एक आम के बगीचे के पास स्थित था. उस समय मैं करीब आठ वर्ष का था और सदाकत आश्रम के निकट दीघा घाट स्थित St. Michael's High School में पढ़ता था. राजेन बाबू के आने का समाचार सुनकर कई लोग बहुत उत्साहित हुए. कुछ दिनों तक तो कई राजनेता उनके घर आते रहे लेकिन फिर यह क्रम करीब-करीब बंद हो गया. मेरा घर सदाकत आश्रम के पास ही था और स्कूल से लौटते हुए अक्सर मैं उनके घर के पास से गुज़रता और इस महापुरुष के दर्शन करने का प्रयास करता. अक्सर राजेन बाबू अपनी पत्नी के साथ बाहर के बरामदे में बैठे रहते थे. जब कई दिन इस तरह बीत गए तो राजेन बाबू ने एक ऐसे अवसर पर अपने एक सेवक को कह कर मुझे बुलवाया. उस समय मेरी खुशी की कोई सीमा न थी. मैंने डॉक्टर और श्रीमती प्रसाद के पाँव छुए. दोनों ने बहुत प्रेम से मुझसे बातें की. उसके बाद मैं चार या पांच बार डॉक्टर प्रसाद से फिर मिला. कुछ दिनों के बाद श्रीमती प्रसाद का निधन हो गया. राजेन बाबू बिलकुल अकेले हो गए थे. डॉक्टर प्रसाद को दमे की शिकायत थी और उसके कारण उन्हें कभी-कभी बहुत खांसी आती थी.

डॉक्टर प्रसाद की उदारता की कोई सीमा नहीं थी. वो मुझसे काफी देर बातें करते थे. अपने ड्राइंग रूम में ले गए जहाँ देश-विदेश की अनेक कलाकृतियाँ देखने को मिलीं. इनमें से दो मुझे अब भी याद हैं. इनमें सर्वप्रथम था डॉक्टर प्रसाद को दिया गया देशरत्न का पुरस्कार. उन दिनों इस पुरस्कार का नाम 'देशरत्न' ही था, 'भारतरत्न' बाद में आया. यह पुरस्कार पीतल से बनी एक पीपल के पत्ते की आकृति थी

> *राजेन बाबू कांग्रेस पार्टी के उन गिने-चुने लोगों में से एक थे जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के समय अपने निजी जीवन को करीब-करीब ताक पर रख दिया था और केवल स्वतंत्रता संग्राम के लिए ही काम करते थे.*

जिस पर लिखा था 'देशरत्न डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद'. दूसरी अविस्मर्णीय कलाकृति थी एक लॉन्ग प्लेयिंग रिकॉर्ड के बराबर वृत्त. इसके बीच में भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन का रथ में बैठे गीतोपदेश के समय का छोटा सा चित्र था. उस चित्र के एक घोड़े के पिछले पैर से शुरू होकर गीता के सारे ७०० श्लोक लिखे हुए थे. उनको पढ़ने के लिए magnifying glass की आवश्यकता होती थी. डॉक्टर प्रसाद का निजी कक्ष एक सच्चे गांधीवादी का कक्ष था और उनके सादे जीवन का गवाह था. बस एक बिस्तर, कुछ कुर्सियां और मेज थीं. इस कक्ष से सटा उनका अत्यंत सुन्दर पूजा गृह था. उसमें राम परिवार की अत्यंत आकर्षक प्रतिमाएँ थीं और पूजा गृह के ऊपर के चौखट पर लिखा था 'हारिये न हिम्मत बिसारिये न हरि को नाम, जाही विधि राखे राम ताहि विधि रहिये'.

डॉक्टर प्रसाद के पटना आवास के दौरान एक बार सीमान्त गाँधी (खान अब्दुल गफ्फार खान) उनसे मिलने आये. डॉक्टर प्रसाद ने मुझे सीमान्त गाँधी से भी मिलवाया और मुझे उनके पाँव छूने का सुअवसर मिला.

आज से पचास वर्ष पहले अक्टूबर १९६२ में एकतरफा युद्ध में भारत को चीन ने झकझोर दिया. पूरे देश में डर और आक्रोश का वातावरण था. बहुत बीमार होने के बावजूद डॉक्टर प्रसाद देश सेवा में जुट गए. हथियार खरीदने के लिए विदेशी मुद्रा की बहुत आवश्यकता थी. इस कमी की पूर्ति करने के लिए कई महिलाओं ने अपने आभूषण दान में दिए. इस अभियान में डॉक्टर प्रसाद ने बढ़-चढ़कर भाग लिया हालाँकि उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चुका था.

कुछ ही महीनों बाद २८ फरवरी १९६३ को उनका देहांत हो गया. उस मनहूस घड़ी में मैं स्कूल में था. प्रिंसिपल ने आकर हमें बताया कि डॉक्टर प्रसाद नहीं रहे और उनके सम्मान में स्कूल उस दिन बंद रहेगा. रोते बिलखते मैं उनके घर तक आया. अपार भीड़ जमा थी. उनकी शव यात्रा आरंभ हुई. राजेन बाबू के कई प्रशंसकों समेत अनेक अति महत्वपूर्ण राजनैतिक और सामाजिक नेता शव यात्रा में शामिल हुए.

राजेन बाबू को गुज़रे हुए करीब ५० वर्ष बीत गए हैं. इस बीच में राजनीति के स्तर में कितनी गिरावट आयी है यह सर्वविदित है. आज के राजनेताओं से युवा वर्ग निराश है और अनुकरणीय व्यक्तियों की खोज में है. इस वर्ग को इस महापुरुष के जीवन से बहुत कुछ सीखने को मिल सकता है और कई वर्षों तक ये प्रेरणा के स्रोत रह सकते हैं.

अभी भी उनकी प्रेरक बातें याद आती हैं. राजेन बाबू कहा करते थे 'अपने लिए तो सब जीते हैं, देश के लिए जियो तो कोई बात बने.' डॉक्टर प्रसाद के जन्मदिन (३ दिसम्बर) पर उन्हें हमारा शत-शत प्रणाम.■

गर्भनाल

एक क्लिक पर पूरे अंक एक साथ

www.garbhanal.com

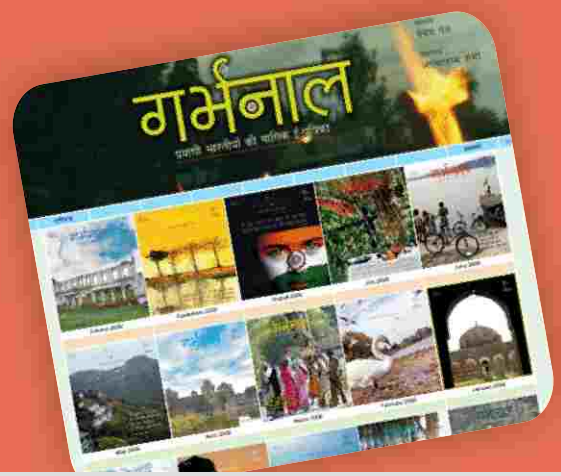

गर्भनाल के पुराने अंक पाएँ
एक साथ एक ही जगह
लॉगऑन करें

www.garbhanal.com

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :
garbhanal@ymail.com

कविता वर्मा

२६ मार्च को जन्म. शिक्षा - एम.एस.सी., एम.बी.ए., हिन्दी ब्लॉग 'कासे कहूँ?' http://kavita-verma.blogspot.in पर लगातार सक्रिय हैं.

सम्पर्क : ५४२-अ, तुलसी नगर, बॉम्बे हॉस्पिटल के पास, इंदौर-४५२०१० ईमेल - kvtverma27@gmail.com

लड़कों में आत्मघाती प्रवृत्ति

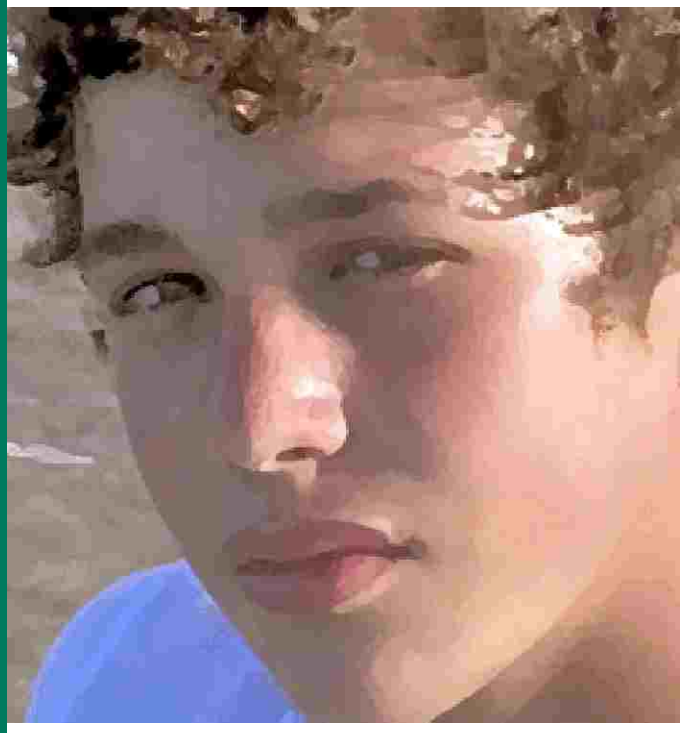

सुबह का अखबार पढ़ते ही मन दुखी हो गया. खबर थी, मेडिकल फाइनल के एक छात्र ने इसलिए फांसी लगा कर आत्महत्या कर ली क्योंकि उसकी प्रेमिका की सगाई कहीं और हो गयी थी. उस छात्र के जीजा जो खुद मेडिकल ऑफिसर हैं ने एक दिन पहले उसे इसी बारे में समझाइश भी दी थी लेकिन रात वह होस्टल के कमरे में अकेला था और उसने इसी अवसाद में फांसी लगा ली. इसी के साथ एक और खबर थी कि मेडिकल पेशे से जुड़े एक और व्यक्ति ने कुछ दिनों पहले अपनी प्रेमिका के द्वारा किसी और से शादी करने की वजह से आत्महत्या की कोशिश की और वह अभी तक कोमा में है.

आजकल आये दिन अखबार में युवा लड़कों द्वारा आत्महत्या किये जाने की ख़बरें आम हो गयीं हैं. ये लड़के अवसाद की किस गंभीर स्थिति में होंगे कि उनके लिए उनके माता-पिता, भाई-बहन परिवार जिम्मेदारी कोई चीज़ मायने नहीं रखती और वे इस तरह का आत्मघाती कदम उठा लेते हैं.

अगर इस बारे में गंभीरता से सोचा जाये तो हमारे यहाँ का पारिवारिक सामाजिक ढांचा इस स्थिति के लिए बहुत हद तक जिम्मेदार है. हमारे यहाँ लड़कों को बहुत ज्यादा संवेदनशील न समझा जाता है न उनका संवेदनशील होना प्रशंसनीय बात मानी जाती है. बचपन से ही उन्हें इस मानसिकता के साथ पाला जाता है कि तुम लड़के हो, तुम्हें बात बात पर भावुक होना या रोना शोभा नहीं देता. इस तरह से एक प्रकार से घर परिवार के लोगों के साथ वे अपनी भावनाएं शेयर कर सकें इस बात पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है. लड़के १०-११ साल के होते न होते अपनी बातें घर के लोगों से छुपाना शुरू कर देते हैं. अधिकतर माता-पिता को पता ही नहीं होता कि स्कूल में या अपने दोस्तों के बीच बच्चा किस मानसिक दबाव से गुजर रहा है. स्कूल में भी लड़कों पर कई तरह के दबाव होते हैं. वहां भी कोई परेशानी होने पर उनकी बात उस सहानुभूति के साथ नहीं सुनी जाती जिस सहानुभूति के साथ लड़कियों की बातें सुनी जाती हैं. उसके साथी लड़के अगर उसे चिढाते हैं या उसके साथ उसे अच्छी न लगे ऐसी बातें करते हैं तो वह इस बारे में न घर पर

> *लड़कों को भी मजबूत भावनात्मक सहारे का एहसास करवाया जाये. परिवार, स्कूल में उनकी बातें सहानुभूति के साथ सुनी और समझी जाएँ. उनकी संगत, दोस्ती, लड़कियों के प्रति उनके आकर्षण को समय रहते समझा जाये.*

न ही स्कूल में किसी से कह पाता है. इस उम्र में इतनी समझ भी विकसित नहीं होती कि अपने दोस्त की सीक्रेट बातें अपने तक रखी जाएँ. इस तरह यदि कोई बच्चा अपने किसी दोस्त को अपने मन की बातें बताता भी है तो उसका हमउम्र दोस्त उन बातों को कभी भी सबके बीच उजागर कर के उसे शर्मिंदा कर देता है. और इस तरह लड़कों में अपनी बातें अपने दोस्तों को भी न बताने की प्रवृत्ति जन्म लेती है. (फिल्म जिंदगी न मिलेगी दोबारा इसका बहुत ही बढ़िया उदाहरण है).

थोड़े बड़े होने पर हाईस्कूल तक आते-आते जबकि लड़कों में बहुत सारे परिवर्तन होने लगते है एडोलेसेंस या वयःसंधि के परिवर्तन की जितनी जानकारी लड़कियों को दी जाती है लड़कों को वैसी जानकारी देने के इतने प्रयास नहीं किये जाते हैं. परिणाम स्वरूप वह आधी अधूरी जानकारी या हमउम्र साथियों द्वारा मिली गलत जानकारी के आधार पर इनसे जूझता है. यही वह उम्र होती है जब लड़कों में लड़कियों के प्रति आकर्षण बढ़ता है. ऐसे समय में जब उन्हें उनसे दोस्ती की चाह होती है. ये चाह एक हमदर्द या संवेदनशील दोस्त की चाह ज्यादा होती है. ऐसे में अगर उन्हें एक लड़की की दोस्ती हासिल हो जाये जो वाकई दोस्ती रखना चाहती हो तो ठीक लेकिन अगर वह लड़की किसी कारणवश दोस्ती न करे या दोस्ती तोड़ दे तो उन पर खुद को एक वयस्क के रूप में साबित करने का दबाव रहता है और सिगरेट शराब पीना, लड़ाई-झगड़ा करके खुद को एक हेरोइटिक इमेज में दर्शाना, दाढ़ी बढ़ाना, स्कूल में नियमों को तोड़ना, टीचर्स के साथ बदतमीजी करना, अनापशनाप गाड़ी चलाना आदि इसी के परिणाम होते हैं. असल में लड़के इस उम्र में खुद को एक वयस्क के रूप में स्थापित करने की जद्दोजहद में होते हैं.

किशोर उम्र की लड़कियों की जितनी जानकारी उनके घरवालों द्वारा रखी जाती है कि वह कहाँ जा रही हैं, किससे मिल रही हैं, लड़कों के बारे में उतनी जानकारी रखना उनके घरवाले जरूरी नहीं समझते, ऐसे में उसकी किसी लड़की से दोस्ती या दोस्ती की हद समझाने के भी बहुत प्रयास नहीं किये जाते हैं. न ही उनकी दोस्ती टूटने की और उससे होने वाले अवसाद की कोई जानकारी परिवार वालों को होती है. ऐसे समय में लड़के के बहुत ज्यादा घर से बाहर होने को दोस्तों की गलत संगत, पढ़ाई न करना, कमरे में अकेले बैठे रहना, कान में एयर फोन लगा कर खुद को सबसे दूर रखने की कोशिश को कोई भी उनके डिप्रेशन से जोड़ कर न देखता है न समझता है. ये मान लिया जाता है कि इस उम्र में लड़के ऐसे ही हो जाते हैं और उम्र बढ़ने पर, समझ आने पर संभल जायेंगे. पर कभी कभी बहुत देर हो जाती है.

परिवार की लड़कों से उनके कैरियर के बारे में भी बड़ी-

> *वे अपने दुःख, अपनी चिंताएं अपने घरवालों से आसानी से शेयर नहीं करते. यहाँ तक कि अपनी पत्नी से भी वे कई बातें छुपा जाते हैं. लेकिन जब परेशानियाँ हद से बढ़ जाती हैं तब घर छोड़ कर चले जाना या आत्महत्या जैसे कदम उठा लेते हैं.*

बड़ी उम्मीदें होती हैं. कई बार माता-पिता अपनी उम्मीदें उन पर थोप देते हैं जिन्हें पूरा करना उनके लिए नामुमकिन दिखता है. लेकिन इस बारे में बात करने पर उन्हें माता-पिता की नाराजगी ही मिलती है. उन्हें पढ़ाई करो तो क्या नहीं कर सकते, दोस्तों को छोड़ने, टीवी न देखने जैसी ढेरों हिदायतें मिल जाती हैं.

लड़कों का ये अकेलापन उनकी उम्र की हर स्टेज पर देखने को मिलता है. वे अपने दुःख, अपनी चिंताएं अपने घरवालों से आसानी से शेयर नहीं करते. यहाँ तक कि अपनी पत्नी से भी वे कई बातें छुपा जाते हैं. लेकिन जब परेशानियाँ हद से बढ़ जाती हैं तब घर छोड़ कर चले जाना या आत्महत्या जैसे कदम उठा लेते हैं. आज आये दिन अख़बारों में वयस्क व्यक्तियों द्वारा कर्ज का बोझ बढ़ने या पारिवारिक समस्याओं से जूझने में असमर्थ रहने पर आत्महत्या कर लेने की ख़बरें बहुत आम हो गयीं हैं.

अब समय आ गया है जबकि लड़कों को भी मजबूत भावनात्मक सहारे का एहसास करवाया जाये.

परिवार, स्कूल में उनकी बातें सहानुभूति के साथ सुनी और समझी जाएँ. उनकी संगत, दोस्ती, लड़कियों के प्रति उनके आकर्षण को समय रहते समझा जाये और इस दिशा में उन्हें सही समय पर सही सलाह दी जाये.

उनके भावुक होने को मजाक में न लिया जाकर उन की परेशानियों को समझा जाये और उन्हें इससे उबरने के लिए उचित सलाह दीं जाएँ.

किशोरावस्था के परिवर्तनों को समझाने के लिए स्कूल में, परिवार में उन्हें सही समय पर सही मार्गदर्शन दिया जाये.

बचपन से ही उन्हें सिर्फ दिखावटी मजबूत होने के बजाय वाकई ऐसा मजबूत बनाया जाये कि वे अपनी परेशानियों को अपने परिवार के साथ शेयर करें उसमें झिझकें न.

लड़कों की परवरिश में थोड़ा-सा परिवर्तन कर के हम उन पर पड़ने वाले दबावों को कम कर सकते हैं और ऐसी आत्मघाती प्रवृत्तियों से उन्हें बचा सकते हैं. ■

देवेन्द्र सिंह

वीर रस के कवि के तौर पर स्थापित देवेन्द्र सिंह १९८० से अमेरिका में रहे हैं. राष्ट्रभक्ति से भरी कविताओं को वे ओजपूर्ण आवाज में प्रस्तुत कर लोगों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं. 'एक शाम हिंदी के नाम' तथा 'हिंदुत्व गर्जन' नाम से इनकी रचनाओं की एक सी.डी. व डी.वी.डी. भी उपलब्ध है. आपने 'पश्चिम की पुरवाई' नाम से अमेरिका के स्थाई कवियों की कविताओं का संग्रह भी संपादित किया है. हिंदी को अमेरिकी स्कूलों में द्वितीय भाषा के तौर पर लाने के लिए आप लगातार प्रयास कर रहे हैं. हिंदी-सेवी भावना के लिए आपको नईदिल्ली की अक्षरम, न्यूयार्क के वर्ल्ड बिजनेस फोरम, न्यूजर्सी की दशहरा समिति और फ्लोरिडा की हिंदू यूनिवर्सिटी ने सम्मानित किया है.

संपर्क : 70 Homestead Drive, Pemberton, NJ 08068 Emal : Devendra.singh@hindiusa.org

अच्छा या सही

बहुत से लोगों में यह भ्रम है कि अच्छा व्यक्ति होने से ही विश्व सुधर जाएगा. वे किसी की बुराई किए अथवा किसी से बैर या लड़ाई किए बिना अपना जीवन गुजारते हैं और भगवान की पूजा-अर्चना कर अपना मन व चरित्र निर्मल रखते हैं. यह जीवन जीने की बहुत अच्छी शैली है और एक प्रकार से अनुकरणीय भी है. परंतु यह आवश्यक नहीं है कि अच्छा व्यक्ति सदैव सही काम ही करे. हमारे समाज में अधिकतर अच्छे व्यक्ति किसी सही परियोजना में संलग्न नहीं हैं और न ही वे इसकी चाह रखते हैं. उन्हें लगता है कि उनके अच्छे बने रहने से समाज की व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहेगी. यहाँ केवल सही राय या उपदेश देना 'सही होने' में सम्मिलित नहीं है.

अच्छे व्यक्ति को सही कार्य या परियोजना में अपनी निष्काम सेवाएँ देना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि ऐसा नहीं करने से बुरे व्यक्ति समाज को नकारात्मक रूप से नियंत्रण में कर लेते हैं. यदि बुरा व्यक्ति सही कर्म करे, तो वह अच्छे व्यक्ति से श्रेष्ठ है, जो सही काम का नेतृत्व या उसमें अपना सकारात्मक योगदान नहीं देता. इसलिए अच्छे के साथ-साथ सही व्यक्ति बनना अति आवश्यक है.

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि सही कार्य की परिभाषा क्या होती है अथवा यह निर्णय कौन करेगा कि कथित विशेष कार्य ही सही है. इस प्रश्न का उत्तर अलग-अलग व्यक्ति अपने आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास के अनुसार देंगे. परंतु सामान्य तौर पर सही कार्य दो स्रोतों द्वारा परिभाषित किए जा सकते हैं :

१. शास्त्रों के अध्ययन से, २. कार्य के प्रभाव क्षेत्र से

भ्रम या संदेह की स्थिति में हिंदू शास्त्रों के सहारे से सही कार्यों का चयन किया जा सकता है और बुरे कार्यों को त्यागा जा सकता है. कभी-कभी छल कपट या नीति-विरोधी लगने वाले कार्य भी सही हो सकते हैं, यदि उन्हें उनके उपयुक्त परिपेक्ष्य में देखा जाए. जैसे यदि भगवान राम का बालि को मारना या श्रीकृष्ण का जयद्रथ को मरवाने का अध्ययन उनकी पूरी पृष्ठभूमि के साथ किया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि ये कार्य न केवल सही थे, बल्कि पूरे समाज के लिए आवश्यक थे. जैसे चिकित्सक शल्य चिकित्सा में मरीज पर हिंसा करते हुए प्रतीत होता है, परंतु यह हिंसा सकारात्मक है, क्योंकि इसमें मरीज का ही लाभ है. यहाँ महत्वपूर्ण है कि सही कार्य से सदैव समाज का ही लाभ होना चाहिए. यदि किसी कार्य से केवल व्यक्तिगत लाभ ही होता है, तो वह सही कार्य नहीं हो सकता.

> *हमारे समाज में अधिकतर अच्छे व्यक्ति किसी सही परियोजना में संलग्न नहीं हैं और न ही वे इसकी चाह रखते हैं.*

कार्य के प्रभाव क्षेत्र से भी कार्य के सही या गलत होने को आँका जा सकता है. यदि कार्य से केवल स्थानीय लाभ तो होता प्रतीत होता है, परंतु कोई सार्वभौमिक प्रभाव होता नहीं दिखाई देता, तो वह कार्य पूर्ण रूप से सही या लाभकारी नहीं माना जाएगा. जैसे बॉम्बे को मुंबई करवाने में अधिक ध्यान देना, परंतु इंडिया को भारत में बदलने के प्रति उदासीनता या उपेक्षा का भाव रखना पूर्णतया सही कार्य नहीं है. इसी प्रकार अपनी जाति या प्रदेश के लिए तो सक्रिय रूप से कार्य करना, परंतु जाति-प्रथा के उन्मूलन के लिए कार्य करने और देश के हित को अपने प्रदेश के हित से ऊपर रखने के प्रति केवल दिखावटी बातें करना सही नहीं माना जाएगा.

इसलिए इस लेख के संदेश से सही कार्य को समझाने के लिए चार लक्षणों का विवरण दिया जा सकता है :

१. **अच्छा और सही व्यक्ति :** यह आदर्श स्थिति है, और इसे ही हमें अपने चरित्र में स्थापित करना चाहिए.

२. **बुरा व्यक्ति और सही कार्य :** जब व्यक्ति बुरा होकर भी समाज के लिए अच्छा कार्य करता है, तो वह कार्य चाहे उपरोक्त कार्य जैसे पूरी तरह से शुद्ध न हो, परंतु समाज या व्यक्ति के लिए लाभकारी हो सकता है. जैसे यदि कोई डाकू बैंक को लूट कर पूरा धन निर्धनों में वितरित कर दे, तो वह कार्य इस श्रेणी में आएगा.

३. **अच्छा व्यक्ति परंतु सही कार्य नहीं :** समाज के ज्यादातर व्यक्ति इस श्रेणी में आते हैं. ये अपना जीवन सही कार्यों में न लगाकर नष्ट कर रहे हैं. भगवद्गीता व्यक्तियों को अच्छे कार्य करने की शिक्षा देने हेतु ही लिखी गई है.

४. **बुरा व्यक्ति और बुरा कार्य :** इस श्रेणी में अधम और गिरा हुआ आचरण करने वाले लोग आते हैं. ओछे राजनीतिज्ञ इसमें सम्मिलित हैं. इस श्रेणी को किसी भी मूल्य पर त्यागना चाहिए.

प्रत्येक व्यक्ति का प्रयास होना चाहिए कि वह अपने को पहली श्रेणी में लाने का सक्रिय प्रयास करे. इससे समाज का लाभ तो होगा ही, परंतु साथ ही साथ हमारे कर्मफल हमें प्रभावित नहीं करेंगे और परिणामस्वरूप हम अपने जन्म मरण प्रक्रम के चक्र को रोकने में सफल होंगे. हिंदू शास्त्रों के अनुसार यही हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए.■

आत्माराम शर्मा

२६ फरवरी १९६८ को ग्राम खरगापुर, टीकमगढ़, मध्यप्रदेश में जन्म. हिन्दी साहित्य में एम.ए. और एम.सी.ए. की उपाधि. नईदुनिया समाचार-पत्र में कला-समीक्षक के तौर पर लेखन. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और कविताओं का प्रकाशन. 'गर्भनाल पत्रिका' के संस्थापक सदस्य एवं पूर्व-सम्पादक. सम्प्रति : जनसम्पर्क विभाग, मध्यप्रदेश के सृजनात्मक उपक्रम 'मध्यप्रदेश माध्यम' में उप प्रबन्धक.

सम्पर्क : डीएक्सई-२३, मिनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड, भोपाल-४६२०२३ (म.प्र.). ईमेल : atmaram.sharma@gmail.com

बातचीत

हिन्दी-प्रेमी सुश्री दागमार मारकोवा से आत्माराम शर्मा की बातचीत

आत्माराम : अपने बचपन, परिवार, दोस्तों और गांव-देहात-शहर की स्मृतियों को पाठकों के साथ साझा करना चाहेंगी.

दागमार : मेरा बचपन छोटे-से कस्बे में गुज़रा. कस्बा सरहद के इलाके में था जिस पर हिटलर ने सबसे पहले कब्ज़ा कर लिया. आज़ादी जब मिली तब मैं दस साल की थी. ज़माना बहुत बुरा था, फिर भी पहला बचपन अच्छा गुज़रा.

दागमार मारकोवा

१२ अगस्त १९३५ में चेकोस्लोवाकिया में जन्म. हिंदी-संस्कृत का अध्ययन. १९५३-१९५७ चार्ल्स विश्वविद्यालय प्राग, १९५७-५८ हुमबोल्द्त विश्व विद्यालय बर्लिन. १९५८-१९६४ हुमबोल्द्त विश्व विद्यालय में हिंदी का अध्यापन. '१९४७ के बाद के हिंदी उपन्यास में नारी समस्याएँ' पर स्नातकोत्तर थीसिस प्रस्तुत की. १९६५-१९६९ में जर्मन अकादमी के पूर्वी देशों के संस्थान में अनुसंधान कार्य, बाद में विदेशी भाषाओं के अन्य स्कूलों के अलावा चार्ल्स विश्वविद्यालय में हिंदी साहित्य का अध्यापन। हिंदी से चेक में अनेकों अनुवाद, हिंदी साहित्य के संदर्भ में आलेख. हिंदी-चेक शब्दकोश (प्राग) की सह-लेखिका, चेक-हिंदी शब्दकोष (दिल्ली) में सहयोग.

सम्पर्क: dagmarmarkova@post.cz

माता-पिता स्कूलों में पढ़ाते थे. एक भाई है जो मुझसे आठ साल छोटा है. बिजली का इन्जीनियर है.

मुझे जानवरों का बहुत शौक था, अब भी है. बहुत मिनमिनाने के बाद माता-पिता ने कुत्ता रखने दिया जो मेरा सबसे प्यारा जानवर क्या, सबसे प्यारा दोस्त बन गया. उसके ट्रक के नीचे दब जाने के बाद मैं लगभग बीमार हो गई. बाद में भी कुत्ते थे लेकिन उनमें वह बात नहीं थी.

बचपन में मेरी दो खास सहेलियाँ थीं. तब दोस्ती करने की मेरी एक शर्त थी- कल्पना-शक्ति. तरह-तरह के किस्से गढ़ती थी और फिर यह नाटक जैसे खेलती थी. सिर्फ़ अपने लिए. वैसे मामूली खेल में दिल नहीं लगता था. बाद में एक सहेली अपने माता-पिता के साथ वहाँ से चली गई, उसके पिता को दूर शहर में नौकरी और घर मिल गया. हम दोनों इतना रोयीं कि क्या बताऊँ.

> *जिसका दिल लिखने को चाहेगा और क्षमता होगी वह लिखेगा ही. और जो तमाम अवसरों से सिर्फ़ फ़ायदा उठाना चाहेगा वह या तो कुछ नहीं लिखेगा या घटिया लिखेगा.*

स्कूली पढ़ाई से लगाकर भारत आकर हिन्दी की उपाधि प्राप्त करने तक का सफर कैसा गुजरा. भारत और हिन्दी प्रेम का ऐसा कौन-सा आकर्षण था जो आपको यहाँ तक खींच लाया.

जब १८ की होनेवाली थी तब सवाल सामने आया कि आगे क्या पढ़ना है. भाषाएँ सीखने में रुचि थी. अँग्रेज़ी की मेरी अध्यापिका मुझे अकसर पढ़ने के लिए अँग्रेज़ी की किताबें देती थीं. उन दिनों संयोगवश भारत के बारे में कुछ किताबें दी

> अब काफ़ी सारे लोग भारत देखने जाते हैं, बहुत-सी किताबें भारत के बारे में और भारत की भाषाओं से अनुवाद प्रकाशित हुए हैं, विशेषकर हिंदी और बांग्ला से.

थीं. तभी मन में निश्चय हो गया हिन्दी. माता-पिता को अच्छा नहीं लगा, लेकिन मान गये. विश्वविद्यालय में दाखला हुआ जो उस ज़माने में आसान नहीं था. फिर भी हो गया. प्राग आ गई. वास्तव में मेरी यही इच्छा थी. प्राग में रहना, प्राग में पढ़ना. प्राग से दिल बहुत लग गया. विश्वविद्यालय में मुझे नई सहेली मिल गई, चीनी की पढ़नेवाली. ज़िंदगी में फिर दूसरी इतनी करीबी सहेली कभी नहीं मिली. वह पढ़ने में बहुत तेज़ थी और मैं उससे पीछे रहना नहीं चाहती थी. मेरे साथ एक बहुत प्रतिभावान लड़का भी पढ़ता था. मेरी वह सहेली अब से २० साल पहले गुजर गई और उसको याद करते ही अब भी दिल में टीस उठती है.

जब पढ़ने का दूसरा साल शुरू हुआ तब भारतीय कलाकारों की प्रतिनिधि मंडली प्राग आई. उनमें आशा सिंह मस्ताना, रविशंकर आदि प्रसिद्ध लोग थे. किसी तरह से उन लोगों के बीच में आ गई तो देखा कि टूटी-फूटी ही सही लेकिन फिर भी हिंदी बोल लेती हूँ और उन लोगों से बातचीत कर सकती हूँ. तो बाद में कितनी भी रुकावटें क्यों न हों, हिंदी और भारत से दिल लगा रहा.

प्राग में भारतीय संस्कृति और भाषाओं को लेकर किस तरह का नज़रिया है.

पुराने समय में प्राग में भारत के बारे में लोग बहुत ज़्यादा नहीं जानते थे. भारत को एक तरफ़ साधुओं और महाराजों, दूसरी तरफ़ भयानक गरीबी का देश माना जाता था. अब नहीं. अब काफ़ी सारे लोग भारत देखने जाते हैं, बहुत-सी किताबें भारत के बारे में और भारत की भाषाओं से अनुवाद प्रकाशित हुए हैं, विशेषकर हिंदी और बांग्ला से.

चेक विश्वविद्यालय के भाषा विभाग के बारे में बतायें. वहां एशियाई भाषाओं में हिन्दी आदि की क्या दशा है.

चार्ल्स युनिवर्सिटी में हिंदी, बांग्ला, तमिल और संस्कृत पढ़ाई जाती हैं. पढ़ने वाले अक्सर इसके साथ कोई और विषय लेते हैं क्योंकि तभी नौकरी मिलना ज़्यादा आसान होगा. वैसे भारतीय भाषाएँ पढ़ने में दिलचस्पी कम नहीं है, लेकिन सब लोग अपना पढ़ना पूरा नहीं कर पाते. पूरा कोर्स ५ साल का है, जिसमें ३ साल बी.ए. और २ साल एम.ए., कुछ विद्यार्थी केवल बी.ए. तक ही पढ़ते हैं.

हिन्दी साहित्य में उपन्यास, कहानी, कविता आदि में कौन-सी विधा आपको सबसे ज्यादा अपने करीब लगती है.

आरंभ में और अब भी हिंदी उपन्यास और कहानी में मुझे रुचि है. इन विधाओं का अनुवाद करती हूँ.

आप साहित्य में क्या देखना चाहती हैं.

मैं हमेशा से साहित्य में मामूली लोगों के जीवन का चित्रण देखना चाहती हूँ. और मनोवैज्ञानिक चित्रण जो आधुनिक हिंदी साहित्य में बहुत मिलता है.

क्या साहित्य समय से पीछे हो गया है.

कहना मुश्किल है कि साहित्य समय से पीछे हो गया है या नहीं. मुझे तो लगता है कि हिंदी साहित्य समय से पीछे नहीं है. भारत में जीवन-स्तर और रहने के तरीके तो तरह-तरह के होते हैं, यह सब साहित्य में चित्रित होते हैं.

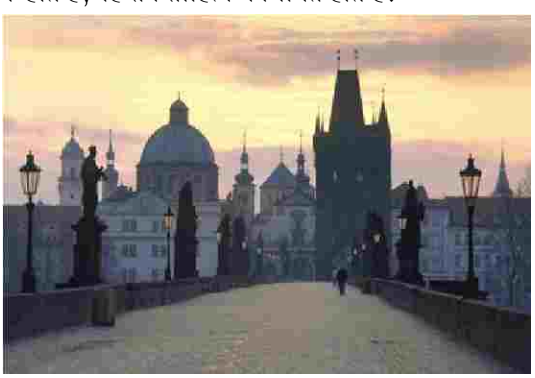

विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य के बारे में एक राय यह बनती है कि यह नॉस्टेल्जिया का साहित्य है.

हाँ विदेशों में लिखे जा रहे साहित्य में अक्सर कुछ नॉस्टेल्जिया मिलता है. मुझे लगता है कि केवल हिंदी में ही नहीं. इसमें ताज्जुब की क्या बात है. अपने देश से बढ़कर कुछ नहीं है. उल्टे मुझे लगता है कि देश से बाहर रहकर लिखे हुए भारतीय साहित्य में मानसिकता सबसे अच्छी तरह अभिव्यक्त होती है.

भारतीयों की पहली पीढ़ी ने भारत में हिन्दी सीखी, पढ़ी और फिर विदेश में रहकर हिन्दी में खुद को अभिव्यक्त करने लगे. इसके बाद की पीढ़ी का हिन्दी को लेकर क्या रवैया है.

लोग तरह-तरह के होते हैं. यह भी एक सवाल है कि मिले-जुले परिवार की नई पीढ़ी है या खालिस भारतीय. अक्सर जो भाषा बाहर चारों तरफ़ से सुनाई देती है उसी को बच्चे प्राथमिकता देते हैं और बड़े होने पर वही रास्ता अपना लेते हैं. लेकिन सब नहीं, यह तो गर्भनाल के पन्नों में दर्ज विदेशी धरती पर रहने वाले युवाओं की रचनाओं में देखा जा सकता है कि किस तरह वे अपनी जड़ों से अब भी जुड़े हुए हैं.

आपकी निगाह में लेखक एक आम आदमी से किस प्रकार भिन्न होता है.

लेखक अगर सच्चा लेखक हो तो आम आदमी से ज़्यादा दूर देखता है और सतह के नीचे देखता है.

चेक गणराज्य में हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार निर्मल वर्मा लम्बे समय तक रहे. उनके वहां रहने से हिन्दी प्रेमियों के दायरे में विस्तार हुआ.

मुझे तो नहीं लगता कि निर्मल वर्मा के यहाँ रहने से हिंदी प्रेमियों के दायरे में कोई परिवर्तन हुआ. उन्होंने यह प्रयत्न भी नहीं किया होगा. उनका उद्देश्य चेक भाषा, साहित्य, समाज और इतिहास से अच्छी तरह से परिचित होना था, हिंदी का प्रचार करना नहीं. उन्होंने यह सब कुछ बढ़िया प्रकार से किया. इन दिनों उनके लेखों का अनुवाद कर रही हूँ जो उन्होंने रूसी आक्रमण से पहले और इसके बाद लिखे. इनमें तब के वातावरण का इतना बढ़िया वर्णन किया गया है कि जिसे वे दिन याद हैं उसे पढ़कर झुरझुरी आती है.

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के भविष्य को आप किस नज़र से देखती हैं.

मेरे विचार में हिन्दी को पहले अपने देश में अपनी उचित जगह मिलनी चाहिए. तब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसका भविष्य उज्ज्वल होगा.

इन दिनों निर्मल वर्मा के लेखों का अनुवाद कर रही हूँ जो उन्होंने रूसी आक्रमण से पहले और इसके बाद लिखे. इनमें तब के वातावरण का इतना बढ़िया वर्णन किया गया है कि जिसे वे दिन याद हैं उसे पढ़कर झुरझुरी आती है.

आज का युवा साहित्य से दूर होता जा रहा है, इसके लिये आप किसे दोषी मानती हैं.

आजकल युवा वर्ग को बहुत से मनोरंजन के साधन मिलते हैं. फिर भी मुझे लगता है कि सारा युवा वर्ग साहित्य से नहीं हटता. यहाँ अपने नगर में ट्राम या मेट्रो में देखती हूँ कि बहुत से लड़के-लड़कियाँ खड़े-खड़े भी पुस्तक पढ़ते हैं.

हिन्दी में प्रायोजित पुरस्कारों, सम्मानों और विदेश यात्राओं के दौर से लेखन के स्तर में इजाफा हुआ है या गिरावट आई है.

मुझे नहीं लगता कि विदेश यात्राओं आदि से हिंदी के स्तर में गिरावट हुई है. लेकिन इज़ाफ़ा हुआ है यह भी नहीं कह सकती. जिसका दिल लिखने को चाहेगा और क्षमता होगी वह लिखेगा ही. और जो तमाम अवसरों से सिर्फ़ फ़ायदा उठाना चाहेगा वह या तो कुछ नहीं लिखेगा या घटिया लिखेगा. ■

राजकिशोर

राजनीति में रुचि थी, लेकिन पत्रकारिता और साहित्य में आ गये. अब फिर राजनीति में लौटना चाहते हैं, लेकिन परंपरागत राजनीति में नहीं. सोचते हैं कि क्या मार्क्स की राजनीति गांधी की शैली में नहीं की जा सकती. एक व्यापक आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा रखते हैं. उसके लिए साथियों की तलाश है. आजकल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ फ़ेलो हैं. साथ-साथ लेखन और पत्रकारिता भी जारी है. रविवार, परिवर्तन और नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ सहायक सम्पादक के तौर पर काम किया. कई चर्चित पुस्तकों के लेखक. ताजा कृति : उपन्यास 'तुम्हारा सुख'.

सम्पर्क : ५३, एक्सप्रेस अपार्टमेंटस, मयूर कुंज, दिल्ली-११००९६ ईमेल : truthonly@gmail.com

गांधी विचार की सबसे बड़ी कमी

बाइबल में कहा गया है : सुई की नोक से ऊँट भले ही निकल जाए, अमीर आदमी नहीं निकल सकता. यह शिक्षा सभी धर्मों में दी गई है. सिर्फ शब्द अलग-अलग हैं. जीवन में सबसे बड़ा मूल्य है धर्म और उसकी रक्षा के लिए बड़ी से बड़ी चीज का त्याग किया जा सकता है. धर्म की तुलना में भौतिक संपन्नता तो बहुत तुच्छ चीज है. जीवन के पुरुषार्थों में धन कमाना भी शामिल है, लेकिन वह धन किस काम का जिससे धर्म और मोक्ष की प्राप्ति में सहायता न हो? वे हीरे-मोती लेकर क्या करोगे जो तुम से तुम्हारा खुदा ही छीन ले?

यह शिक्षा कम से कम तीन हजार वर्षों से दी जा रही है. लेकिन क्या वजह है कि किसी भी देश या समाज में यह मूल्य स्थापित न हो सका? उलटे होता यह है कि प्रत्येक धर्म प्रचारक अपने अनुयायियों को धन-दौलत की निस्सारता बताते-बताते स्वयं धनवान हो जाता है? कौन नहीं जानता कि जिसने इच्छाओं की गुलामी स्वीकार कर ली, उसने अपने आपको मटियामेट कर लिया? आधुनिक जीवन की बेचारगी और व्यर्थता का कारण यही है कि इस जीवन दर्शन में संयम के लिए कोई स्थान नहीं है. इच्छाओं और जरूरतों का घोड़ा जब एक बार सरपट दौड़ने लगा, तो फिर उसे रोका नहीं जा सकता. कहा जाता है, रुक जाना मृत्यु है, चलते जाने में जिंदगी है. महात्मा गांधी का जीवन दर्शन इच्छाओं की उच्छृंखलता के विरुद्ध उन पर नियंत्रण तथा भौतिकता की पूजा करने के विरुद्ध आध्यात्मिक साधना का है. सत्य और अहिंसा इसके सक्षम औजार हैं. जो अपने ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है, वही दुनिया पर विजय प्राप्त कर सकता है. हैरत की बात है कि तीस-चालीस वर्ष तक भारत के स्वतंत्रता संघर्ष का नेतृत्व करते हुए और सक्रिय राजनीतिक जीवन बिताते हुए भी गांधीजी मूलतः एक नैतिक शिक्षक का काम करते रहे. सत्य और अहिंसा उन्हें इतने प्रिय थे कि उनकी कीमत पर उन्हें स्वाधीनता भी नहीं चाहिए थी. हजारों लोगों ने अपने व्यक्तिगत जीवन में गांधीजी के इस आदर्श को उतारा, लाखों लोगों ने गांधीजी की इस सीख में अपना विश्वास प्रगट किया और करोड़ों लोग गांधीजी के भक्त और प्रशंसक बने.

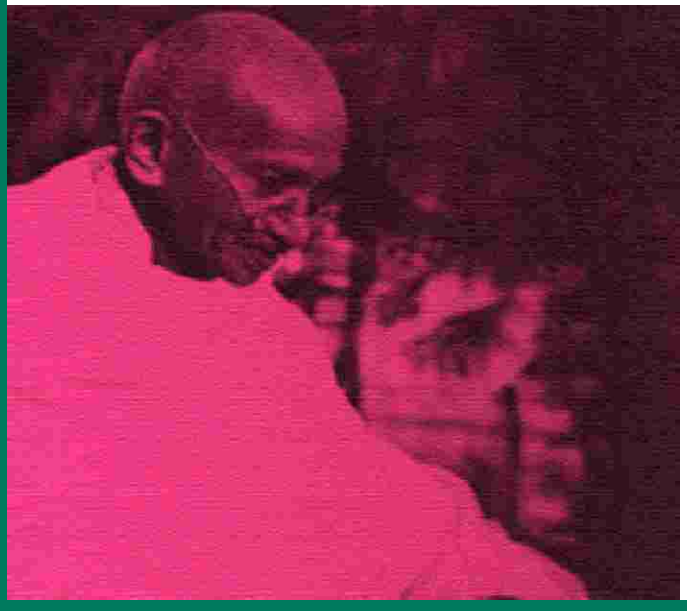

> धरती के पास इतना है कि वह सबकी जरूरतें पूरी कर सके, पर इतना नहीं कि एक आदमी के भी लालच को संतुष्ट कर सके.

इतिहास ने तीन-चार दशकों की इस अवधि को गांधी युग के नाम से दर्ज किया.

क्या महात्मा गांधी इससे खुश थे? हाँ, तब तक जब तक वे विश्वास करते रहे कि देश की इतनी बड़ी जनता उनके साथ चलने को तैयार है. उनका यह विश्वास उस वक्त तक बना रहा जब कांग्रेस ने स्वाधीनता के साथ भारत विभाजन स्वीकार कर लिया. गांधीजी ने बार-बार कहा था कि देश का विभाजन मेरी लाश पर होगा. लेकिन जब उनके सभी सेनाध्यक्षों ने उनका साथ छोड़ दिया और सत्य तथा अहिंसा की राजनीति करने के बजाय सत्ता लोलुपता का शिकार बन गए, तब गांधीजी का आत्मविश्वास टूट गया और वे जिंदा लाश बन गए. उस समय आमरण अनशन कर वे अपनी जान दे सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया तो शायद इसीलिए

कि अब भारत की राजनीतिक सत्ता की निगाह में उनके जीवन का कोई मूल्य नहीं रह गया था और गांधीजी के मन में संदेह पैदा हो गया था कि देश उनका साथ देगा या नेहरू-पटेल के पीछे चलेगा. ऐसे माहौल में निर्रथक जान देने का क्या फायदा था? देश भर में जिस तरह का सांप्रदायिक वातावरण बन रहा था, उसमें गांधीजी को अपना जीना जरूरी लगा. शायद वे अपनी उपस्थिति से उस पागलपन को रोक सकें.

गांधीजी को अपने जीवन का सबसे बड़ा झटका तब लगा जब एक-दूसरे का खून बहानेवालों ने उनकी अपीलों को कोई तवज्जो नहीं दिया. गांधी देश भर में घूम-घूम कर हिंसा के विरुद्ध तथा प्रेम और भाई-चारा के पक्ष में बोल रहे थे और कोई उनकी नहीं सुन रहा था. यहाँ तक कि कांग्रेस की सरकार भी सांप्रदायिक दंगों को रोकने में बहुत दिलचस्पी नहीं दिखा रही थी. इस खून-खराबे को देख कर गांधीजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इतने दिनों तक भारत के लोग उनके पीछे नहीं चल रहे थे, बल्कि पीछे चलने का नाटक कर रहे थे. महात्मा अपने शिष्यों से ही छला गया.

प्रश्न किया जा सकता है कि गांधीजी की इस विफलता का उनके जीवन दर्शन से क्या संबंध है? संबंध यह है कि सत्य और अहिंसा का पालन करने की ईमानदार कोशिश वही कर सकता है जो सभी को अपना भाई-बहन मानता हो और जो किसी को वंचित कर अपना घर भरने के लालच से मुक्त हो. खादी इसी जीवन दर्शन का प्रतिनिधित्व करती है. सांप्रदायिक हिंसा के तांडव ने गांधीजी को यह साक्षात्कार कराया कि उन्हें माननेवालों के भीतर कितनी हिंसा भरी हुई थी. यह हिंसा कहाँ से आई थी?

हिंसा के मूल स्रोत को जानने के लिए यह रेखांकित करना आवश्यक लगता है कि आजादी के बाद भारत ने आर्थिक क्षेत्र में संयम और सादगी का रास्ता चुनने के बजाय संपन्नता और शाहखर्ची का रास्ता चुना. बराबरी के बजाय विषमता को बढ़ाने की नीति बनाई. चूँकि समस्त देश को एकबारगी रहन-सहन का ऊँचा स्तर नहीं दिया जा सकता था, इसलिए सभी राष्ट्रीय प्रयत्नों के केंद्र में मुट्ठी भर लोगों की सुख-सुविधा बढ़ाने और बाकी सभी लोगों को उनकी किस्मत पर छोड़ देने की क्रूर राजनीति थी. वही अर्थनीति आज तक जारी है. पहले समाजवाद का नाटक था. अब सुधारों का तमाशा है.

सवाल है, ऐसा क्योंकर हुआ? जिन्होंने भारत के लिए स्वार्थ और विषमता का रास्ता चुना, वे इतने बुरे आदमी तो नहीं थे. वे स्वतंत्रता संघर्ष की आँच में तपे हुए लोग थे और एक विशाल आंदोलन से निकल कर आए थे. यहीं मुझे लगता है कि गांधी विचार में ही कोई बुनियादी कमी है जिस वजह से

गांधीजी जिस ग्राम स्वराज की बात करते हैं, उसमें सुख-सुविधाओं को कम करने की बात है न कि उनका निरंतर विस्तार करने की. पर ऐसा जीवन उबाऊ नहीं होगा? आखिर इस स्थिर जीवन की ऊब को पीछे छोड़ते हुए ही तो हम यहाँ तक पहुँचे हैं.

उसकी प्रशंसा तो बहुत की जाती है, लेकिन उसके अनुसार जीना बहुत ही - बहुत ही - मुश्किल है. गांधी विचार की तारीफ करना वैसे ही है जैसे उपनिषद काल के ऋषियों, गौतम बुद्ध, महावीर और ईसा मसीह के उपदेशों की तारीफ करना. कहने की जरूरत नहीं कि गांधीजी को इसी परंपरा में रख कर देखा भी जाता है. वे राजनीतिज्ञ से ज्यादा संत थे. इसीलिए उन्हें 'महात्मा' की पदवी भी मिली. सवाल यह है कि दुनिया में कितने लोग महात्मा का अनुसरण कर जिंदगी बिता सकते हैं? झोंपड़ी में रहना कितने लोगों को कबूल होगा? इच्छाओं को दबाने में आनंद होगा, पर इच्छाओं को पूरा करने में सुख जरूर है. सामान्य दिमाग आनंद नहीं, सुख खोजता है. दुनिया में नब्बे प्रतिशत से ज्यादा लोग सामान्य दिमाग के ही होते हैं. इसलिए बुद्ध, महावीर, ईसा मसीह आदि की पूजा जारी रहती है और उसके समानांतर भोग की संस्कृति पुष्ट होती जाती है.

मेरे खयाल से, यह द्वंद्वात्मकता ही जीवन की मूल समस्या है. हम जानते हैं, जैसा कि महात्माजी ने कहा था, धरती के पास इतना है कि वह सबकी जरूरतें पूरी कर सके, पर इतना नहीं कि एक आदमी के भी लालच को संतुष्ट कर सके. फिर भी, लालच हमसे छूटता नहीं और समाज में भौतिक उपलब्धियों की प्रतिद्वंद्विता जारी रहती है. 'पहले हम' यह मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है.

गांधीजी जिस ग्राम स्वराज की बात करते हैं, उसमें सुख-सुविधाओं को कम करने की बात है न कि उनका निरंतर विस्तार करने की. पर ऐसा जीवन उबाऊ नहीं होगा? आखिर इस स्थिर जीवन की ऊब को पीछे छोड़ते हुए ही तो हम यहाँ तक पहुँचे हैं. औद्योगिक क्रांति ने एक तरह से परम आज्ञाकारी तथा पलक झपकते ही सब कुछ ला हाजिर करनेवाला जिन्न हमें सौंप दिया है. इस जिन्न को लात मार कर कृषि सभ्यता की ओर लौटना कौन चाहेगा?

कोई विचार समाज की आत्मा में बस जाए, उसके लिए उसे मानव प्रकृति की कसौटी पर व्यावहारिक भी होना चाहिए.■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

व्याख्या

गीर्वाण शान्तिप्रदं / निर्वाणशान्तिप्रदं

राम की एक और विशेषता यह है कि वे देवताओं को शान्ति प्रदान करते हैं. बाल कांड (दो १२१) में तुलसी कहते हैं : असुर मारि थापहिं सुरन्ह. लंकाकांड में (दोहा १०८) उन्होंने पुनः कहा : 'जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो/नाना तनु धरि तुम्हहि नसायो..' ईश्वर का अवतार ही साधुओं के परित्राण और दुष्कर्मियों के विनाश के लिए होता है. भले लोग अक्सर ही दुष्टों द्वारा सताए जाते हैं. ब्रूट फोर्स को भद्र और शालीन लोगों का आदर करने का अवकाश नहीं है. दानवता दुर्धर्ष रही है और सौम्यता का मज़ाक उड़ाया जाता रहा है. बदतहज़ीबी की ऐंठ और धौंस नंगे और बेहया अंदाज़ में जारी रही है. फ्रेंकलिन ने कहा था : Rebellion to tyrants is obedience to god अत्याचारी के प्रति विद्रोह ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है.' देवताओं से यहां आशय उस किस्म के विभागीय देवों से नहीं जहाँ वर्षा का विभाग इन्द्र को दे दिया जाता है या मृत्यु का डिपार्टमेंट यम को. ये वे देवता भी नहीं जो आकाश से आए थे. प्रोटो इंडो यूरोपियन भाषा में 'डीवोस' शब्द का अर्थ देवता तो है और यह द्युलोक को भी इंगित करता है. लिथुआनियन डीवास, लाटवियन डीव्स, प्रशियन डीवाज़, लैटिन डियूस, फ्रेंच ड्यू, स्पेनिश डिओस, इटैलियन डिओ और संस्कृत देव. ये सारे शब्द क्या सिर्फ़ भाषाओं के एक केन्द्रण को ही बताते हैं या कि इस श्रेणी के लोग कभी सर्वत्र थे- इन सभी भाषाओं में इनका एक अर्थ संबंध आकाश से है. जैसे लैटिन 'डिवम' का मतलब खुले आकाश से है. लेकिन राम द्वारा अन्तरिक्षीय देवताओं को शान्ति प्रदान करने के लिए धरती पर आना कमोबेश आइज़क आसिमोव की विज्ञान फंतासी जैसा हो सकता है कि एक समय पृथ्वी नामक इस ग्रह का शासक इतना ताक़तवर हो गया हो कि अन्तरिक्षीय ताक़तें त्रस्त और अस्तव्यस्त हो गई हों. तुलसीदास आर्थर क्लार्क की तरह कोई इम्पीरियल अर्थ या स्पेस ओडेसी नहीं रच रहे हैं. क्लार्क भले ही श्रीलंका में बहुत समय से निवास करते चले आने से यह विश्वास बनाए हुए हों कि आदमी किसी प्राचीन अजनबी (एलियन) सभ्यता की सम्पत्ति है, लेकिन यहां तुलसी तो उस एक लोक मान्यता को ही वाणी देते हुए ज्यादा विश्वसनीय जान पड़ेंगे कि जहां सीधे सरल सच्चे आदमी को देवता कहा जाता है. देवता यहां हवाई नहीं, जमीनी हैं. नील गैमेन के उपन्यास 'अमेरिकन गौड्स' की तरह ये देवता क्रेडिट कार्ड, फ्रीवे, इंटरनेट, प्लास्टिक, बीपर और नियन के देवता नहीं है. देवताओं से यहां आशय किसी अशरीरी, किसी गगनचर, किसी अन्य ग्रह के द्युनिवासियों से मानने की आवश्यकता भी नहीं है. यहां तो उन भले और सज्जन

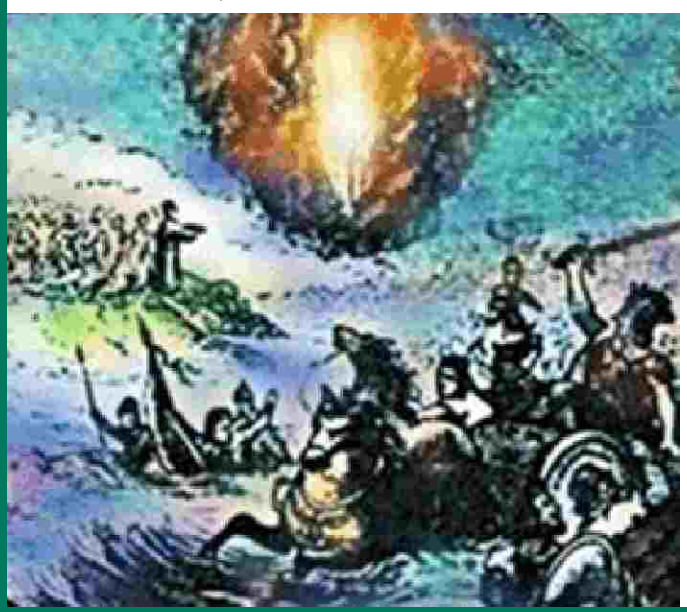

> फ्रेंकलिन ने कहा था : Rebellion to tyrants is obedience to god. अत्याचारी के प्रति विद्रोह ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है.' देवताओं से यहां आशय उस किस्म के विभागीय देवों से नहीं जहाँ वर्षा का विभाग इन्द्र को दे दिया जाता है या मृत्यु का डिपार्टमेंट यम को.

लोगों से अभिप्रेत है जो सात्विक हैं. कालिदास कहते थे कि सज्जन अपने मित्रों पर कृपा की दृष्टि डालते हैं, शरों की वर्षा नहीं करते- 'प्रसाद सौम्यानि सतां सुहृयज्जने पतंति चक्षूंषि न दारुणः शराः. वस्तुतः ऐसा वे दुष्टों के साथ भी नहीं कर पाते. विप्रियमव्याकर्ष्य ब्रूते प्रियमेव सर्वदा सुजनः. सज्जन किसी की कटुवाणी सुनकर भी सदा मधुर वाणी ही बोलता है. न्यूमैन का कहना था कि सज्जन पुरुष की वास्तविक परिभाषा यही है कि वह कभी किसी व्यक्ति को पीड़ित नहीं करता (He is one who never inflicts pain) लेकिन ऐसा 'देवता' दुष्टों के हाथों हमेशा सताया जाता है. भारवि

ने कहा था 'प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः'. दुर्जन स्वभाव से ही सज्जनों के शत्रु होते हैं. देवता-सम भले व्यक्ति जितना उन्हें समझाते हैं उतना उनका अत्याचार बढ़ता जाता है. चाणक्य का कहना था कि 'न दुर्जनः साधुदशामुपैति/बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः/ आमूलसिक्तः प्यसा घृतेन/न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति..' दुर्जन को यदि अच्छी-अच्छी शिक्षा दी जाए तब भी वह साधु नहीं हो सकता. जैसे नीम के पेड़ को यदि दूध और घी से सींचा जाए तो भी वह ाधुर नहीं होगा. इसलिए देव-स्वरूप को उनके हाथों शान्ति नहीं मिलती, वे उनके अत्याचार और संत्रास के शिकार रहते हैं. तब राम जैसा ही कोई उन भलेमानसों को शान्ति दे पाता है. क्या लगता है? देवता भले मनुष्य नहीं हैं? देवता प्रकृति की शक्तियों पर नियंत्रण रखने वाली ऊर्जाएँ हैं. प्रकृति से शासित होने वाले मनुष्य नहीं हैं लेकिन तब देवता एक मानवीय दुनिया में क्यों हैं? इस दुनिया के इंसानों पर वे नज़र ही नहीं रख रहे, वे उनसे इंटरएक्ट भी कर रहे हैं, क्यों? वे एक मानवाकार hominoid) रूप में क्यों हैं? जब वे या उनका अंश पृथ्वी पर उतरा, मनुष्य के 'परिधान' में, मनुष्य की 'धातु में तो मनुष्य की नियति से उन्होंने क्या अपने को बांध नहीं लिया? या इसे उल्टे तरीके से देखें? मन की ही शुभ वृत्तियों का विश्व नाट्यमंच पर बहिरंगी रंगकर्म (exteriorization) देवताओं के रूप में है? या भारतीय पौराणिकी से बाहर चलकर, देवताओं ने मनुष्यों को एक भृत्य जाति (servant race) की तरह काम करने के लिए बनाया? लेकिन ऐसी माइथोजेनेटिक व्याख्याओं की बजाय गीर्वाण के रूप में हम मनुष्यता के भीतर मौजूद साधुवृत्ति के सात्विक पुरुषों को ही देवता क्यों न मानें? स्कंदोपनिषद में मानव शरीर को देवालय इस तर्क के आधार पर कहा गया कि जीव केवल शिव है : देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः. अथर्ववेद में माना गया कि यह शरीर आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली देवपुरी अयोध्या है, जिसमें सोने का एक ज्योतिस्वरूप एवं स्वर्ग के प्रकाश से परिपूर्ण रमणीय प्रकोष्ठ वाला मस्तिष्क है : अष्टाचक्रा नवद्वारा देवाना पूरयोध्या/तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः (अथ. १०.२.३१). शास्त्रों में देवताओं की चार विशेषताएँ बताई गई हैं, एक, देवताओं का पैर धरती से ऊपर रहता है. जमीन को छूता नहीं. दूसरा, देवता पलक नहीं झपकाते. तीसरा, देवताओं को पसीना नहीं आता. चौथा, देवता की परछाई नहीं बनती, उनकी देह पारदर्शी होती है. इन चारों विशेषताओं का भले आदमियों के संदर्भ में अर्थ क्या है? दरअसल धरती को न छूना पार्थिव आकर्षणों से, भौतिक प्रलोभनों से अस्पर्शित रहना है- कीच में कमल की तरह विरत और उपराम. दूसरी विशेषता सतत जागरूकता की है, इटर्नल विजिलेंस की. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी. वैसे भी लोगों के दुःख और दुर्दशा के कारण भले लोग स्लीपलेस नाइट्स बिताते ही हैं. तीसरी विशेषता पसीना न आने की है. इसका अर्थ हुआ उनके आचरण में छिद्र न होने का. छिद्रान्वेषियों की भरसक कोशिशों के बावजूद भला आदमी यथासंभव अपने व्यवहार में छिद्र न रखने की कोशिश करता है. उसे मालूम रहता है कि उसके छिद्रों के आधार पर ही उसे ब्लैकमेल किया जा सकता है. संस्कृत की एक कहावत है 'छिद्रेष्वनर्थाः बहुली भवन्ति' यानी छिद्रों के विद्यमान होने पर अनर्थ बहुगुणित हो जाता है. अपने कर्तव्य में छिद्र न छोड़ने वाला देवता है. उसका मन निष्कलुष होता है. वह मैल का न सृजन करता है, न उत्सर्जन. उसमें मनोमालिन्य भी नहीं होता. चौथी विशेषता है पारदर्शिता. देवता आदमी में कुटिलता नहीं होती. वह ऋजु होता है. आर्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है: जो ऋजु है, एक सौ अस्सी डिग्री की सरल रेखा वाला. ऋग्वेद कहता है :- सुगा ऋतस्य पंथा, ऋत का रास्ता सरल है. सरल आदमी के रथ की वल्गा स्वयं पार्थसारथी आकर थामते हैं. पारदर्शी आदमी के आर-पार देखा जा सकता है. उसमें गोप्य नहीं होता, वह जैसा भीतर है, वैसा बाहर है. उसके भीतर सत्व का ही प्रकाश है. वह छायाओं के पीछे नहीं भागता. वह 'छाया मत छूना मन, होगा दुःख दूना' की चेतावनी का ही नहीं पालन करता, स्वयं भी छायाओं के कारोबार में कोई योगदान नहीं करता.

प्रभु राम भले लोगों को, देवस्वरूप लोगों को उनके जीवनकाल में शान्ति देते हैं. ये वो देवता नहीं हैं जो मरने के बाद बनते हैं, जिन पर देवत्व का आरोपण कर दिया जाता है. इन मरे हुओं को क्या शान्ति, क्या अशान्ति? इनको देवता बनाया जाता है, ये होते नहीं. मसलन रोमन लोगों ने शासकों को मृत्यूपरांत देवता बनाने की प्रक्रिया शुरू की थी जिसे एपोथिओसिस कहा जाता था. जूलियस सीज़र को सबसे पहले अघोषित देवता घोषित किया गया, ४४ ई.पू. में उसकी हत्या के बाद ५८ वर्ष बाद. जब आगस्टस मरा तो उसे यही पद दिया गया. उनके नाम के आगे 'दिवस' शब्द लगने लगा जो हिन्दू शब्द 'देवस' की याद दिलाता है. बाद में लुसिअस सेनेका ने अपनी पुस्तक एपोकोलोसिंटोंसिस डिविक्लाडी (सम्राट क्लाडिअस का पंपकिनीफिकेशन) में इस देवीकरण प्रक्रिया की पैरोडी भी बनाई जिसमें कटुभाषी और अतिसाधारण सम्राट क्लाडिअस देवता में नहीं, पंपकिन में तब्दील हो जाता है. तो तुलसी के राम ऐसे लोगों के लिए 'गीर्वाण शान्तिप्रदं' नहीं हैं. वे उनके लिए हैं जो देवता हैं, आरोपण के ज़रिए नहीं, सचमुच में. वे सम्भवतः उन लोगों के लिए भी मौजूद नहीं हैं जो स्वघोषित देवता हैं. जैसे सिकंदर महान जो स्वयं को ज्यूस देवता कहता था या रोमन सम्राट क़लीगुला जो अपने को ज्यूपिटर देवता के रूप में पुजवाता था, या लू शेन-येन (१९४५-अब तक) जो स्वयं को अमिताभ बुद्ध के सुखवाटी में रहने वाले देवता पद्मकुमार का अवतार बताता है या सूमा-चिंग-हाई जो स्वयं को अवलोकितेश्वर का अवतार घोषित करती है. तीसरे, यह शान्ति देवताओं वाली है. देवताओं की बहुसंख्या वाली यह शान्ति उस एकदेववाद (मोनोथीज़्म) के समानान्तर है जिसका सिद्धान्त वाक्य था : सिर्फ़ एक ईश्वर. एक रास्ता. अन्य सभी देवता राक्षस

> ऋग्वेद कहता है : सुगा ऋतस्य पंथा, ऋत का रास्ता सरल है. सरल आदमी के रथ की वल्गा स्वयं पार्थसारथी आकर थामते हैं. पारदर्शी आदमी के आर-पार देखा जा सकता है. उसमें गोप्य नहीं होता, वह जैसा भीतर है, वैसा बाहर है. उसके भीतर सत्व का ही प्रकाश है.

> दैत्यों की साज़िशें एक से अधिक मोर्चों और कोणों पर चलती हैं जो कई बार निष्कपट मनुष्य की गिनती के बाहर रहती हैं. वहाँ उन स्थानों पर ईश्वर ही ढाल बनकर आता है. राम का नामस्मरण, राम के प्रति निष्ठा ही उस वक्त साधु को तारती है.

हैं. (Only One God-One way-Other Gods are Demons!) और (Thou shall have no other god before me!'-) मेरे सामने/पहले तुम कोई और देवता न लाओगे. जोरोष्ट्रियन व ज्यूडाई धर्मों, ईसाइयत और इस्लाम में एक God है, लेकिन तुलसी यहां 'gods' की बात कर रहे हैं. जब एकदेववादी परिदृश्य में प्रकट हुए तो न केवल यह हुआ कि अन्य देवताओं की पूजा ही निषिद्ध हो गई बल्कि वे 'ईविल' माने गए और उन्हें नष्ट करना कभी नहीं भूला गया. हम मानते थे कि एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति. कुछ हद तक जोराष्ट्रियन ने भी बहुलता को समायोजित किया. अहुर मज़्दा के साथ-साथ यजता (पूजनीय) अर्द्ध-प्रभुओं को शामिल कर लिया गया जो भगवान के द्वारा बुराई के विरुद्ध संघर्ष में उसकी मदद करने के लिए हैं. इसलिए देवताओं की बहुसंख्या मानना, उन्हें तैंतीस कोटि मानने की बात या तो एक शोर-शराबे (कैकोफोनी) या बेबेल टॉवर जैसी हालत को जन्म दे सकती है या यदि प्रभु राम की कृपा और उनका अवबोध हो तो जीवन की विविधता के स्वीकार भाव से उत्पन्न सहिष्णुता, शान्ति और सद्भाव क़ायम कर सकती है. पाँचवें, देवता रावण की सेवा पूजा के लिए बाध्य होने से वैसे ही अशान्त हैं. इतने बुद्धिजीवी और विषय विशेष के विशेषज्ञ होने के बावजूद वे अत्याचारी अधिनायक की सेवा में नियोजित हैं. यह अन्तर्ज्वाला उन्हें दग्ध तो करती ही होगी. उनके लिए राम ही शान्तिप्रदं हो सकते थे.

अनेक भक्तों, मसलन ब्रह्मानंद ने विष्णु से इसी शान्ति की प्रार्थना की थी- लभेयं तां शान्तिं परममुनिभिर्या ह्यधिगता/दयां कृत्वा मे त्वं वितर परशान्तिं भवहर.. (परमेश्वरस्तुतिसार स्त्रोतं)/ हे भवबंधन से मुक्त करने वाले भगवान! तुम दया करके मुझे वही पराशान्ति दो. ब्रह्मानंद के ही श्री भवच्छरणस्तोत्रम में शान्ति के लिए दो आवश्यकताएँ होना बताई हैं. एक, 'दृष्टि में समता' दो, स्थिरता : शान्तिः कुतो मम भवेत्समता न चेत्यात्रस्मात्/अर्थात एक यदि मेरी दृष्टि में समता नहीं हुई तो मुझमें शान्ति कैसे फलीभूत हो सकती है और दूसरे, तां वै विना मन न चेतसि शान्तिवार्ता.. अर्थात् स्थिरता के बिना चित्त में शान्ति कथनमात्र के लिए भी नहीं हो सकती.

राम भले लोगों को वही शान्ति देते हैं. भले लोगों की प्रकृति रक्षा करती है. भले लोग अपने आसपास क़िले और दुर्ग नहीं बनाते. वे तो खुले और पारदर्शी होते हैं. दुष्ट लोग इसी का फ़ायदा उठाते हैं, उन्हें तरह-तरह से त्रस्त करते हैं. भले लोगों को उनकी दुरभिसंधियों और कपटपूर्ण चालों का भान भी नहीं होता लेकिन तब वे क्या सर्वथा असुरक्षित हैं? डिफेन्सलेस? कि लोग रेशमी दस्तानों में लोहे का हाथ छुपाकर आते हैं और भले लोगों का गला घोट जाते हैं? कि भले लोग इस संसार के विशाल स्कीमिंग जाल में फँस गए हैं और शिकार हो जाने के सिवाय उनके पास कोई रास्ता नहीं है? शिकारी गिद्धों को ये मेष जैसे सीधे लोग बहुत पसंद आते हैं. फ्रेडरिक नीत्शे ने उन शिकारी गिद्धों की कथा सुनाई थी जो कहते थे : We have nothing against these good lambs ; in fact, we love them; nothing tastes better than a tender lamb. ये गीर्वाण क्या वे ही 'टेंडर लैंब' हैं? क्या सृजेता ने उन्हें शिकारी गिद्धों का आहार बनने के लिए खुला छोड़ दिया है? अवतार होता ही इसलिए है कि ईश्वर हस्तक्षेप करता है. सीधा हस्तक्षेप. इसीलिए बालकंड में ही भगवान वचन देते हैं : निर्भय होहु देव समुदाई, इन्हीं अर्थों में तुलसी के राम गीर्वाण शान्तिप्रदं हैं. वे साक्षी होने मात्र के लिए नहीं हैं. वे अपने दखल की घोषणा सुग्रीव के साथ भी करते हैं और विभीषण के साथ भी. वे सत्ता के समीकरण पलट देते हैं. ईश्वर गज की भी मदद करता है और द्रौपदी की भी. वह दरिद्रनारायण भले लोगों की, सरल, अबोध और निश्छल लोगों की मदद के लिए दौड़ा चला आता है. जब वे सहज विश्वासी लोग अपने प्रति हो रहे क्रूर षड्यंत्रों से अनजान अपने सत्कार्यों में दत्तचित लगे रहते हैं तब उनके कमज़ोर कोने ढँकने का काम वही ईश्वर करता है. मनुष्य अपनी गणना से जितने मोर्चों को सम्भालेगा, उतने ही संभलेंगे. लेकिन दैत्यों की साज़िशें एक से अधिक मोर्चों और कोणों पर चलती हैं जो कई बार निष्कपट मनुष्य की गिनती के बाहर रहती हैं. वहाँ उन स्थानों पर ईश्वर ही ढाल बनकर आता है. राम का नामस्मरण, राम के प्रति निष्ठा ही उस वक्त साधु को तारती है. 'करउँ सदा तिन्ह के रखवारी/जिमि बालक राखइ महतारी.'

यह कहा जा सकता है कि सिर्फ़ 'गीर्वाण शान्तिप्रदं' ही क्यों कहा गया? राम तो साधु और असाधु दोनों को ही गति देते हैं. निर्वाण तो वे दुष्टों को भी देते हैं. राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्वान. मारीच के प्रति तो राम की विशेष करुणा रही है. जिस तरह से अहिल्या को तारा, उसी तरह से ताड़का को भी. 'दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा.' लेकिन फ़र्क़ यह है कि अहिल्या को उन्होंने जड़ से चेतन किया और ताड़का को चेतन से जड़ किया. साधु को जीवन में शान्ति, असाधु को मरने के बाद. रावण का यही भरोसा तो है 'प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ' इसलिए प्रत्यक्षतः तो वे देवताओं को ही शान्तिप्रदं हैं. बार-बार राक्षसों से परेशान देवता विष्णु के पास पहुँचते हैं, शिव के पास पहुँचते हैं, शक्ति के पास पहुँचते हैं, ब्रह्मा के पास पहुँचते हैं. देवताओं को परेशान होना ही है. लेकिन राम सरीखे लोग उनका सतत आश्वासन हैं.

तुलसी के गीर्वाण शान्तिप्रदं का एक और महत्वपूर्ण आयाम है. गीर्वाण देवता हैं, लेकिन देवता और दैत्य कोई अलग-अलग रेस (प्रजाति) नहीं हैं. औपनिवेशिक इतिहासकारों ने हमें जातीय संघर्षों में उलझाए रखने के लिए कई रेसिस्ट व्याख्याएँ कीं और भारतीय एकता के ही टुकड़े-टुकड़े कर दिए. वेदों में सत्व और तमस की शक्तियों के बीच, प्रकाश और अंधकार की ताक़तों के बीच लड़ाई की बात कही गई है. हमारा सबसे पवित्र माना जाने वाला गायत्री मंत्र 'सविता' की बात करता है. भगवान राम

आदित्यहृदयस्त्रोत का पाठ करते हैं. यह 'समस्ततेजोमयदिव्यरूपं पुनातु मा तत्सवितुर्वरेण्यम्' की भावना है. इसकी मुठभेड़ निशाचरों से होती है जो तम और तामस स्वभाव के प्रतिनिधि हैं. अधिकतर पुरानी सभ्यताओं प्राचीन अमेरिकन इंडियन, मिस्रियों, ईरानियों, ग्रीकों में सच और झूठ की शक्तियों के लिए देव-दैत्य का प्रकाश-अंधकार यह रूपक आया है, लेकिन ग्रीक और अमेरिकन इंडियन रूपकों का मतलब निकालते समय यूरोपीय इतिहासकारों की जो रेसिस्ट व्याख्याएँ ग़ायब हो जाती हैं, वे भारत के सम्बन्ध में बड़े ज़ोर-शोर से प्रकट होती हैं. रावण को द्रविड़ बता दिया जाता है, राम को आर्य. जबकि रावण पुलस्त्य के वंश का है और हनुमान अपने प्रबोधन में सुन्दरकांड में उसे इसकी स्मृति दिलाते भी हैं. यूरोपीय इतिहासकारों के तरीक़े बड़े विचित्र थे. असुरों को 'अनासा' कहा गया तो उन्होंने कहा कि यह छोटी/पिचकी नाक वाले द्रविड़ों की ओर संकेत है लेकिन दक्षिण भारतीय लोगों की तो नाक उत्तर भारतीयों से आकार-प्रकार में भिन्न नहीं हैं. बल्कि कई बार तो उनसे भी ज़्यादा उठी हुई और प्रॉमिनेंट है. ऐसे तो असुरों को 'अपाद' भी कहा गया है, इसका मतलब क्या यह लगाया जाए कि असुर लँगड़े होते थे? हमारी कहावत 'झूठ के पाँव नहीं होते' में इसका उत्तर मिलेगा, न कि किसी रेसिस्ट व्याख्या में? जहाँ देव-दैत्य सह पत्नियों अदिति और दिति की संतान थे, वहाँ रेसिस्ट अर्थान्वयन संभव ही नहीं. अदिति से आदित्य का संबंध दैवी गुणों का प्रकाश-पुंज से संबंध ही तो है. हमें यह पढ़ाए जाने की कोशिश होती है कि इन देव-दैत्य रिश्तों की वर्णवादी व्याख्या कर ली जाए. देव गौरवर्ण थे, राक्षस काले कलूटे. लेकिन कोशिश इस बार भी वही है. उत्तर भारत को दक्षिण भारत से लड़ाना. लेकिन आर्यों के वर्णाश्रम में तो ब्राह्मणों को गौर, क्षत्रियों को लाल, वैश्यों को पीला और शूद्रों को काला कहा गया था. अब यदि वर्ण का अर्थ शरीर का कोई भौतिक रंग है तो बताइए क्षत्रियों में ये यूरोपीय औपनिवेशिक व्याख्या वाले रेड इंडियन कहाँ देखे गए? ये वैश्यों के बीच चीनियों-जापानियों जैसी कोई 'यलो रेस' है क्या? और वे चीनी-जापानी भी क्या 'पीले' होते हैं? यदि शूद्र काले हैं और ये सब बातें शरीर के कालेपन के बारे में की जा रही हैं तो कृष्ण और शिव का क्या? तो कहा गया और फूट डालने के उद्देश्य से ही कहा गया कि शिव तो द्रविड़ देवता हैं, अनार्य जातियों के देवता हैं यानी शिवजी का शरीर कालकूट हालाहल के पीने से काला नहीं हुआ, आनुवंशिकता का परिणाम है तो कोई पूछे कि शिव का वंश क्या है? कोई पूछे कि शिव के माता-पिता क्या हैं? द्रविड़ियन शैविज़्म के औपनिवेशिक सिद्धांत के दो अर्थ दिए गए. एक, द्रविड़ शैव हैं, दूसरे, शैव द्रविड़ हैं. दोनों ही अर्थ ग़लत हैं. द्रविड़ वैष्णव संतों की एक लंबी परम्परा है.

दूसरे, प्रत्यभिज्ञा दर्शन तो कश्मीर में पनपा, कैलाश तिब्बत में है, अमरनाथ कश्मीर में, शिव गंगा को अपनी जटाओं में सम्भालते हैं. भारत में शिव हों या विष्णु, उनकी क्षेत्रीय एप्रोप्रिएशन या बन्दरबाँट कभी नहीं हुई. फिर और आगे चलें. शक्ति की भी एक त्रिमूर्ति है. महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती. इनमें से प्रथम का वर्ण है काला, दूसरी का है गुलाबी, तीसरी का है सफ़ेद? तीनों को पूजने वाला भारतीय मानस रंगभेद का मानस होगा? यम का रंग तो हरा बताया गया है? आधुनिक समय में इतिहास का स्कॉलर उसे कहते हैं जो किसी शब्द से जुड़ी अनेकानेक अर्थच्छवियों की

फूट डालो और राज करो की मनोवृत्ति ने शिव की भस्म, उनकी सर्पमाला और उनके गणों को उनके अनार्यत्व की तरह दिखाया और चिन्तन की इस चाल ने आर्य को विशेषण या सम्बोधन की तरह न देखकर जाति के रूप में देखना सिखाया.

समृद्धि की सरासर उपेक्षा कर अपने पूर्वाग्रह के आधार पर एक अर्थ चुन ले. तो ऐसे 'स्कॉलर' ने हमारे इतिहास की व्याख्या उसी सविता देवता के हवाले से यह भी की कि प्राचीन भारत के ये देवता 'गोल्डन स्किन्ड' हुआ करते थे, जिनके बाल भी सुनहरे थे. अब प्राचीन मय, इंका, मिस्री, ग्रीक सभ्यताओं में भी सूर्य देवता सुनहरे रंग के हों तो कोई क्या करे? दरअसल भारत में अँग्रेज़ अपनी उपस्थिति के औचित्य को प्रमाणित करने का कोई मौक़ा नहीं चूकना चाहते थे. इसलिए अपनी 'दैवीय' उपस्थिति को 'दिव्य' उपस्थिति में बदलना 'श्वेत आदमी के भार' (व्हाइट मेन्स बर्डन) थ्योरी का ही विस्तार था? इस औचित्यीकरण के स्व-संभर विश्व में इसकी कोई गुंजाइश ही नहीं थी कि दुनिया के किस हिस्से के किस मिथक में कभी सूर्य देवता को काला कहा गया है?

तो 'गीर्वाण शान्तिप्रदं' का गीर्वाण शब्द रेशियल नहीं है. गीर्वाण वर्ण नहीं है. वर्ण रेस का भी प्रतिनिधि नहीं है. यदि यूरोप के सुनहरे स्वीडिश बाल दक्षिण इटली में आते-आते काले हो जाते हैं तो वे रेस के परिवर्तन का सूचक नहीं हैं. दक्षिण भारतीय राजा चाहे वे चोल हों या पांड्य, अपने वंशवृक्ष का आरम्भ मनु से ही करते थे. फूट डालो और राज करो की मनोवृत्ति ने शिव की भस्म, उनकी सर्पमाला और उनके गणों को उनके अनार्यत्व की तरह दिखाया और चिन्तन की इस चाल ने आर्य को विशेषण या सम्बोधन की तरह न देखकर जाति के रूप में देखना सिखाया. इन्द्र को आर्य और शिव को अनार्य बताने वाली इस चिन्तन, चाल या चालाकी ने प्रसिद्ध संत दक्षिण रमण महर्षि के शिष्य गणपति मुनि की पुस्तक 'इन्द्रेश्वरभेद सूत्रम्' कभी पढ़ने की ज़हमत नहीं उठाई. वैदिक इन्द्र के देवराज और पौराणिक शिव के महादेव होने, इन्द्र के पुरंदर और शिव के त्रिपुरारि होने, इन्द्र की शची और शिव की शक्ति होने, इंद्राणी के सैन्य देवी होने और चंडी के दिव्य सेना के लीडर होने, छांदोग्य में इन्द्र को वर्णमाला में स्वर कहे जाने और तांत्रिक दर्शन में शिव को वर्णमाला में स्वर कहे जाने में, इन्द्र की स्तम्भ पूजा और शिव की लिंग पूजा में जो समानताएं गणपति मुनि ने बताई हैं वे इन दोनों के एकत्व की, अभेद की स्थापना करती हैं. औपनिवेशिक इतिहासकारों द्वारा द्रविड़ मध्यकालीन हिंसक आक्रमणों के वक्त वैदिक संस्कृति के समानान्तर एक प्रतिद्वन्द्वी संस्कृति के रूप में वर्णित होने लगे. मध्यकाल में तो 'भक्ति द्राविड़ ऊपजी' माना जाता था, अब पृथकतावादी आंदोलनों ने द्रविड़ अस्मिता की पहचान करानी शुरू कर दी. भाषा से भाषा को लड़ाया गया. जिन महर्षि अगस्त्य को द्राविड़ भाषाओं का जन्मदाता कहा जाता है, वे ऋग्वैदिक ऋषि थे : यह कोई नहीं

बताता. पुरानी द्राविड़ भाषाएँ ब्राह्म लिपि में लिखी गईं जिस तरह से कभी संस्कृत इस लिपि में लिखी गई. लेकिन देवताओं और देवभाषा दोनों की सिरफुटौवल व्याख्या ही जिन लोगों का इष्ट और अभीष्ट रहा हो, उन्हें शान्ति प्राप्त हो, प्रभु. आज के दौर में 'गीर्वाण शान्तिप्रदं' का यह आव्हान तो और ज़रूरी है. वे बताते हैं कि ब्राह्मणवादी संस्कृति के लिए राम-कथा चली जबकि यह नहीं बताते कि ब्राह्मणवादी संस्कृति एक महापंडित ब्राह्मण रावण को ही राक्षस क्यों बताती है? ऋषि पुलस्त्य का वंशज, सामवेद गाता, शिवभक्त रावण किस चक्कर के चलते एक ग़ैर ब्राह्मणवादी और रेशियल अर्थों में अनार्य के रूप में इन नए इतिहास-शूरों द्वारा प्रतिष्ठित किया गया, ये वे ही जानें. हमें तो रामावतार उनके पूर्व के अवतारों के समय में चले देवासुर संग्रामों के अनेकानेक प्रसंगों का ही विस्तार नज़र आता है. रावण को द्रविड़ नायक के रूप में प्रतिष्ठित करते ये आधुनिक प्रयत्न राजनीति हैं, इतिहास नहीं. निशिचर का अर्थ तो शिवजी के मुख से तुलसी ने बालकांड में ही स्पष्ट करा दिया था : बाढ़े खल बहु चोर जुआरा/जे लंपट परधन परदारा/मानहिं मातु पिता नहिं देवा/साधुन्ह सन करवावहिं सेवा/जिन्ह के यह आचरन भवानी/ते जानहु निसिचर सब प्रानी.

पाठ्यान्तर से निर्वाण शान्तिप्रदं भी मिलता है. हिन्दुओं में निर्वाण ब्रह्म से सायुज्य है, जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति, सुख, दुःख, पीड़ा, वेदना आदि से मुक्ति, सच्चिदानन्द ब्रह्म में सारूप्य. बौद्धों ने इसे 'निवाना' (पालि) कहा. कुछ ने उसे (आग की तरह) बुझने या मिटने की तरह देखा तो कुछ ने इसे पुराचीन अर्थ में उस व्यक्ति की तरह लिया जो शीतल हो गया हो. घृणा, माया, प्रलोभन को बुद्ध दर्शन में तीन प्रमुख बुराइयाँ माना गया और इन तीन बुराइयों का बुखार जिस पर से उतर गया हो, उसे निर्वाण प्राप्त होना बताया गया है. तृतीय शती ई.पू. में मिलिन्दपन्हों में निर्वाण को 'सद्धर्म का नगर' (City of Righteousness) कहा गया. एक प्रारम्भिक बौद्ध लेखक ने लिखा- 'माया मुझसे पूरी तरह निकल गई. अब मैं शीतल हुआ, भीतर से सारी ज्वाला निकल गई.' हिन्दुओं में निर्वाण सभी बंधनों से मोक्ष है, और अज्ञान से मुक्ति; वहीं बौद्धों में निर्ग्रंथ होना प्रज्ञापारमिता और करुणा की स्थिति है. बौद्ध निर्वाण के साथ उस 'अमर' स्थिति का अर्थ लेते हैं कि जो चेतना की सर्वोच्च दशा है, बल्कि अवस्था या दशा भी निर्वाण के लिए सही शब्द नहीं हैं क्योंकि निर्वाण परम सत्य है, कोई दशा या स्थिति नहीं लेकिन हिन्दू और बौद्ध निर्वाण परिभाषाओं की सरहदें कई बार आपस में मिलती हैं. निर्वाण की सच कहें तो कोई परिभाषा है भी नहीं. यह तो अनुभव करने की बात है, प्रत्यक्ष करने की. निर्वाण में द्वैत है ही नहीं. हिन्दुओं की सायुज्य स्थिति बौद्धों में यों थोड़ी सी अलग हो गई कि एकाकार होने के लिए पहुंचने जैसी कोई बात नहीं- there is nothing to unite बल्कि यह अभेद का अनुभव है- an experience of non-separation निर्वाण कोई ऐसा पद नहीं है जो पहले अस्तित्व में नहीं था और अब है. वह हमेशा ही है. सिर्फ़ हमारे नैतिक और आध्यात्मिक अँधेरे के चलते यह हमारे प्रज्ञाचक्षुओं की पकड़ में नहीं आता. वह आत्मानन्द है, वह ब्रह्मानन्द है, वह स्वरस है, वह तथागति है, वह हंसत्व है, वह कैवल्य है, वह एक अव्याकृत अवस्था, तुरीय है. वह बंध में डालने वाले सभी पाशों से परिमोक्षण है. जब तक पाश है, जीव पशु है. उससे मुक्त होने को ही निर्वाण कहा गया है.

> निर्वाण का अर्थ बंधनों से छूटना है लेकिन ये बंधन क्या सिर्फ़ लोभ, मोह, मत्सर के बंधन हैं या वे बंधन भी जो देश, काल और गुरुत्वाकर्षण के रूप में इस संसार में जनम लेते ही हम पर आरोपित होते हैं?

यहां इस प्रसंग में ध्यान रखने योग्य यह बात है कि सुन्दरकांड में जहाँ हनुमान जान-बूझकर नागपाश में फँसते हैं, वहाँ तुलसी ने याद किया है कि हनुमान तो उस हस्ती के सेवक हैं जिसे जपने से भवबंधन कट जाते हैं. इसलिए राम की निर्वाण शान्तिप्रदं के रूप में स्मृति इस अध्याय की शुरुआत में ही कर ली गई कि जो विपाशन और विमोचन, मुक्तकरण और अनाबद्धन की पूजा करता है वह हनुमान के चिर-स्वतंत्र स्वभाव से आश्वस्त रहता है.

निर्वाण का अर्थ बंधनों से छूटना है लेकिन ये बंधन क्या सिर्फ़ लोभ, मोह, मत्सर के बंधन हैं या वे बंधन भी जो देश, काल और गुरुत्वाकर्षण के रूप में इस संसार में जनम लेते ही हम पर आरोपित होते हैं? ये हमारे पृष्ठभूमि संदर्भ (बैकग्राउण्ड रिफरेन्स) हमारी सीमाएँ भी हैं. माया के बंधनों का तानाबाना देश काल और गुरुत्वाकर्षण इन संदर्भी रेशों से ही बुना जाता है. द्वैत सिर्फ़ आत्मा-परमात्मा के बीच का द्वैत ही है या तब भी कि जब पदार्थ (मैटर) कण और तरंग दोनों की ही तरह व्यवहार करता है, पार्टिकल भी और वेव भी? हमारी दृष्टि के ब्लिंकर्स हमारी वासनाओं से ही निर्मित नहीं होते, समय और आकाश और गुरुत्व भी ऐसे ब्लिंकर्स हैं जिन्हें पहनकर ही माया में हमारा प्रवेश होता है. निर्वाण मुक्त करता है हमें हमारे समय, स्थान, गुरुत्व आदि सीमाओं से. यह ध्यान देने की बात है कि 'रिलीजन' शब्द का लैटिन धातुमूल 'रेलिगेअर' है जिसका मतलब है कसकर बाँधना. लेकिन भारत में ये परिभाषाएं और शब्द मुक्तिमूलक हैं.

बुद्ध कहते हैं कि यह तृष्णा से मुक्ति है. बुद्ध के शिष्य मुसिला इसे सातत्य (continuity) से मुक्ति और भवनिरोध (cessation of becoming) से मुक्ति कहते हैं लेकिन मनोरचनाओं को जब हम पकड़कर नहीं बैठते, जब वह हमें बाँधता नहीं, जो भी संवेदन है उससे बिना बँधे जब हम उसका अनुभव करते हैं, तब बुद्ध के अनुसार हम निर्वाण को उपलब्ध होते हैं. इसे यों नहीं देखें कि तृष्णा के अंत का स्वाभाविक परिणाम निर्वाण है. निर्वाण किसी का परिणाम नहीं है. यदि यह परिणाम है तब यह किसी कारण से व्युत्पन्न प्रभाव होगा. तब यह कंडीशंड होगा. निर्वाण न कार्य है न कारण. आप किसी रास्ते पर चलकर पर्वत पहुंचते हैं लेकिन पर्वत रास्ते का प्रभाव या परिणाम नहीं हैं. आप प्रकाश को देखते हैं लेकिन प्रकाश हमारी दृष्टि का परिणाम नहीं है. ■

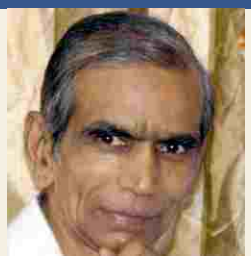

बृजेन्द्र श्रीवास्तव

लेखक-समीक्षक, साहित्य एवं कला, विज्ञान एवं अध्यात्म, ज्योतिष एवं वास्तु, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान जैसे विविध विषयों पर निरंतर लेखन. ५० से अधिक शोध-पत्र विश्वविद्यालयों व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत. जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर में ज्योतिर्विज्ञान अध्ययनशाला के अतिथि अध्यापक.

सम्पर्क : अपरा ज्योतिषम, २६९, जीवाजी नगर, ठाठीपुर, ग्वालियर-४७४०११

ईमेल - brijshrivastava@rediffmail.com मोबाइल - ९४२५३६०२४३

चिन्तन

महत्वाकांक्षा

महत्वाकांक्षा शब्द में महत् उपसर्ग है जिसका अर्थ है बहुत बड़ी, इस प्रकार बहुत बड़ी आकांक्षा को महत्वाकांक्षा कहा जाता है यह इतनी बड़ी होती है कि वर्तमान हैसियत से बाहर की बात होती है. अपने-अपने कार्य क्षेत्र और पसन्द के अनुसार व्यक्ति की महत्वाकांक्षा कुछ भी हो सकती है. व्यापारी को राष्ट्रीय या अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित होने की, वैज्ञानिक को नया खोजन की, विद्यार्थी को बड़े संस्थान में पढ़ने की, गृहिणी की आधुनिक उपकरणों वाली रसोई घर की महत्वाकांक्षा हो सकती है. नेपोलियन और सिकन्दर विश्व विजय की महत्वाकांक्षा रखते थे. महत्वाकांक्षा को हम एक पांच विभागों वाला रॉकेट मान सकते हैं जो अपने लक्ष्य पर इन सभी के तालमेल से ही पहुंच सकता है या कहें कि महत्वाकांक्षी व्यक्ति को अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिए इन पांच गुणों को अपने में विकसित करना होगा.

पहला गुण : सबसे पहले व्यक्ति को वर्तमान स्थिति से असन्तोष होना चाहिए पर यह असन्तोष क्रोध, ईर्ष्या बदला लेने वाला नहीं, रचनात्मक होना चाहिए जो विद्यमान स्थिति को बदलने की बेचैनी को संकल्प की आग में बदल दे. असन्तोष ऐसा भी न हो कि प्रयत्न कुछ भी न किया जाए बस मन में तरह-तरह की कल्पनाएं आती रहें, ऐसी अकर्मण्यता जिसमें भूमि पर लेटे हुए आकाश को छू लेने की इच्छा मात्र हो महत्वाकांक्षा नहीं कहलाती.

वस्तुतः मनुष्य समाज आज जहां है वह व्यक्ति की निजी महत्वाकांक्षा और समाज व देश की सामूहिक महत्वाकांक्षा का परिणाम है. साठ के दशक में गाया जाने वाला गीत 'दिल मेरा इक आस का पंक्षी, पहुंचेगा इक दिन कभी तो, चांद की उजड़ी जमीं पर', दो दशक बाद ही रूस-अमेरिका की महत्वाकांक्षी प्रतिस्पर्द्धा के कारण साकार हुआ और आज मनुष्य चांद व मंगल के उपग्रह पर बस्ती बनाने, होटल खोलने की महती आकांक्षा रखता है तथा प्रयत्नशील भी है.

भारत रत्न विश्वेशरैया जब छोटे थे तो चीफ इंजीनियर की कुर्सी पर बैठ जाने के कारण प्रताड़ित किए गए थे, तब उस बालक ने प्रतिज्ञा की थी कि एक न एक दिन इसी कुर्सी पर अपनी योग्यता से बैठकर दिखाऊंगा और उनकी यह महत्वाकांक्षा इससे भी बड़े रूप में पूरी हुई थी क्योंकि वह निरन्तर असन्तोष की ऊर्जा से अपनी महत्वाकांक्षा को गति व दिशा देते रहे थे.

दूसरा गुण : भविष्य की कल्पना करना और स्वप्न देखना. महत्वाकांक्षी व्यक्ति भविष्य की योजनाएं बनाता है उनमें कल्पनाओं के रंग भरता रहता है. इनमें से कई योजनाएं फेल हो जाती हैं कुछ अधूरी रह जाती हैं. पर कुछ आगे बढ़ती जाती हैं. यदि भविष्य की, जो कि आकार रहित है कुछ कल्पना नहीं की जाएगी तो प्रेरणा कैसे मिलेगी.

तीसरा गुण : अपनी महत्वाकांक्षी योजना पर काम करने में आनन्द का अनुभव करते रहता. भारत की महत्वाकांक्षी मिसाइल योजना के प्रेरणा पुरुष डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने अग्नि की उड़ान पुस्तक में इसे बहुत जरूरी माना है क्योंकि इससे व्यक्ति कठिन श्रम करने में भी थकता नहीं है.

चौथा गुण है : इच्छा शक्ति मजबूत बनाए रखना. केवल इच्छा करने मात्र से कभी कुछ नहीं होता, इसके पीछे शक्ति लगाना होती है या विचारों के स्तर पर होती है इस इच्छाशक्ति को आस्था विश्वास सकारात्मक सोच से ऊर्जा मिलती है व निराशा से उबरने में मदद मिलती है.

> *जीवन में महत्वाकांक्षी हम बनें पर यह ध्यान रहे कि हमारी यह महत्वाकांक्षा लोक हितकारी भी हो.*

पांचवा गुण : अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठावान बने रहना. कठिनाइयों के कारण व्यक्ति को अपने लक्ष्य बदलने या हताश होने के बजाय अपने लक्ष्य पर डटे रहना चाहिए तभी सफलता का सूरज उसके परिश्रम रूपी आकाश पर उदित होता है.

महत्वाकांक्षा निजी सांसारिक जीवन में ही नहीं आध्यात्मिक जीवन में भी उपलब्धि कराती है. ध्रुव के पास क्या था जब वह वन में गया, स्वामी विवेकानंद भी अमेरिका में खाली हाथ ही गए थे पर लक्ष्य को पाने में सफल रहे. चाणक्य नीति के अनुसार राजा को अपनी सीमाओं के विस्तार के प्रति महत्वाकांक्षी होना चाहिए. पहले इंग्लैण्ड और अब अमेरिका इसके उदाहरण हैं. चीन की भारतीय समुद्र में उपस्थिति इसी महत्वाकांक्षा का उदाहरण है.

जीवन में महत्वाकांक्षी हम बनें पर यह ध्यान रहे कि हमारी यह महत्वाकांक्षा लोक हितकारी भी हो. ■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्वुन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेलः prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

माता भूमि और पृथिवी-पुत्र

(काव्यान्तर पृथिवी सूक्त)

(अथर्ववेद- कांड १२, सूक्त १, ऋषि-अथर्वा और देवता पृथिवी)

जनम् बिभ्रती बहुधा विवाचसम्
नानाधर्माणं पृथिवी यथौक्सम्
सहस्रम् धारा द्रविणस्य मे दुहां
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।४५।

विविध धर्मी, विविध भाषा
विविध भूतल मानवों का
एक तुम ही घर अटल
हो गाय कपिला, सरल-सीधी
हमारे हित सहस-धारा दुग्ध,
धन की बनो पृथिवी.

यस्ते सर्पो वृश्चिकत्रिष्टदंश्मा
हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये
कृमिर्जिन्वत् पृथिवी यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः
सर्पन्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड।४६।

सर्प, वृश्चिक, तृषाकारी
तापप्रद, व्रणकर, गुहाशायी
कीट, कृमि पृथिवी
वृष्टि जलकी प्रकट हो जाते चतुर्दिक
रेंगते चलते, डराते पास न आयें हमारे
श्रेष्ठ शिव जो हो हमारा हित करे.

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानंसश्च यातवे
यैः संचरन्त्यभय भद्रपापस्तम् पंथानम्
जयेमानमित्रमतस्करम् यच्छिवम् तेन नो मृड।४७।

मार्ग जो तेरे बहुत पग यात्रियों, रथ धावकों
पशु-वाहनों के लिए निर्मित
पापरत, पुण्यात्मा सब जहां चलते
हों हमें निर्विघ्न सब वे
हम जयी हों शत्रु, तस्कर आदि से
श्रेष्ठ शुभ जो हो हमारा हित करे.

मल्वम् बिभ्रती गुरुभृद्
भद्रपापस्य निधनम् तितिक्षुः
वराहेण पृथिवी संविदाना
सूकराय वि जिहीते मृगाय।४८।

खींचकर अपनी दिशा
सब भार गुरुतर धारती जो
सदा समरस सहन करती
आश्रय पापात्मा सब, पुण्यजन का
सूर्य अवगाहन कराता
किरण माला, मेघ-वर्षा
भूमि जिसका अनुगमन सविशेष करती.

ये ते आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः
सिंहा व्याघ्राः पुरुपादश्चरन्ति
उलं वृकम् पृथिवि दुच्छुनामित रृक्षीकां
रक्षो अप बदध्यासमतत्।४९।

तुम्हारे वन वास करते, भूमि!
आमिष भोज्य केहरि, व्याघ्र
तृण भोगी मृगादिक
वन्य पशु वृक, श्वान,
भालू आदि सबसे
तुम हमें माँ दूर रखना.

ये गंधर्वा अप्सरसो ये
चारायाः किमीदिनः
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि
तानस्मद् भूमे यावय।५०।

हिंस्र, कर्म पराङ्ग्मुख, निर्धन
चोर, आमिष भोज्य, राक्षस
आदि सबसे भूमि, तू हमको बचाना.

क्रमशः...

गीता के ये श्लोक **प्रो. अनिल विद्यालंकार** (sandhaan@airtelmail.in) द्वारा रचित गीता-सार से लिए जा रहे हैं, जिसमें गीता के मुख्य विषयों पर कुल १५० श्लोक संगृहीत हैं.

विषय : पुरुष और प्रकृति

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।।

गीता १४-१०

हे अर्जुन, कभी रज और तम को दबाकर सत्त्व गुण प्रबल हो जाता है तो कभी सत्त्व और तम को दबाकर रजोगुण और कभी सत्त्व और रज को दबाकर तमोगुण प्रबल हो जाता है.

प्रकृति के ये तीन गुण निरन्तर परिवर्तनशील रहते हैं. आज तमोगुण के प्रभाव के कारण आलसी रहनेवाला मनुष्य कल रजोगुण के प्रबल हो जाने पर चंचल प्रकृति का हो सकता है. दूसरी ओर बहुत लालची और क्रूर स्वभाव का व्यक्ति सत्त्वगुण के प्रभाव में आकर सर्वथा शान्त और अहिंसक जीवन बिताने लग सकता है. अपने ही अन्दर हम देखते हैं कि प्रयास करने पर भी हमारा चित्त कभी एक जैसी अवस्था में नहीं रहता. कभी हमारे अन्दर आलस्य प्रबल होता है तो कभी हमारा मन बहुत चंचल हो उठता है. साथ ही, कभी-कभी अप्रत्याशित रूप से गहरी शांति की अनुभूति भी हमें होती है. यह सब प्रकृति के गुणों में परिवर्तन के कारण होता है.

भारत : हे अर्जुन, **रजः तमः च अभिभूय** : रजोगुण और तमोगुण को दबाकर, **सत्त्वं भवति** : सत्त्वगुण प्रबल हो जाता है, **च** : और, **रजः, सत्त्वं तमः** : सत्त्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण, तथा **एव** : उसी प्रकार, **तमः, सत्त्वं रजः** : सत्त्वगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण प्रबल हो जाता है.

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकार-विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।

गीता ३-२७

सारे कर्म प्रकृति के गुणों के द्वारा ही किये जा रहे हैं. अहंकार से विमूढ़ हुआ व्यक्ति 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मानता है.

इस संसार में जो कुछ भी हो रहा है वह सब प्रकृति के गुणों के द्वारा ही किया जा रहा है. जब तक मनुष्य इन गुणों के अधीन है वह कर्म करने में स्वतंत्र नहीं है. क्योंकि हमारी चेतना अहंकार से आच्छादित है इसलिए हम सोचते यही हैं कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह अपनी स्वतंत्र इच्छा से कर रहे हैं. पर वास्तव में हमारे सारे कार्य प्रकृति हमसे करा रही है. हमारे अन्दर जिस समय जो गुण प्रबल होता है हम उसी के अनुसार कार्य करते हैं. अहंकार से ऊपर उठकर, सर्वथा तटस्थ होकर द्रष्टा की भावना से देखने पर ही मनुष्य जान सकता है कि वह प्रत्येक क्षण प्रकृति के बंधन में है. गीता का एक मुख्य संदेश यह है कि मनुष्य इस बंधन को पहचाने और इससे मुक्ति पाने का प्रयास करे.

कर्माणि : कर्म, **सर्वशः** : सभी प्रकार से, **प्रकृतेः गुणैः क्रियमाणानि** : प्रकृति के गुणों के द्वारा किए जा रहे हैं, किन्तु, **अहंकारविमूढात्मा** : अहंकार से विमूढ आत्मावाला मनुष्य, **अहं कर्ता इति मन्यते** : 'मैं कर्ता हूँ', ऐसा मानता है.

नियतं संगरहितम् अरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत् तत्सात्विकमुच्यते।।

गीता १८-२३

जो कर्म अपने लिए नियत हो और जो संगरहित होकर बिना राग और द्वेष के और बिना फल की इच्छा के किया जाए उसे सात्त्विक कर्म कहते हैं.

गीता में कर्म, कर्ता, त्याग, ज्ञान, सुख, यज्ञ, दान, आहार आदि को सत्त्व, रज और तम के प्रभाव की दृष्टि से सात्त्विक, राजसिक और तामसिक इन तीन श्रेणियों में बाँटा गया है. किस प्रकार का कर्म सबसे अच्छा है इसके बारे में गीता का कहना है कि सात्त्विक कर्म वह है जिसे मनुष्य अपने लिए निश्चित हुआ मानकर कर्तव्य की भावना से करता है. सात्त्विक कर्म के करने में कर्ता को न तो कोई आसक्ति होती है और न वह इस कर्म को किसी के प्रति राग या द्वेष की भावना से करता है. सात्त्विक भावना से कर्म बिना किसी फल की इच्छा के किया जाता है; इससे कर्ता के मन में सदा शान्ति और प्रसन्नता रहती है.

अफलप्रेप्सुना : फल की इच्छा न रखनेवाले मनुष्य के द्वारा, **यत् नियतं कर्म** : अपने लिए निश्चित जो कर्म, **सङ्गरहितं** : संगरहित होकर, और **अरागद्वेषतः** : राग और द्वेष के बिना, **कृतम्** : किया गया है, **तत् सात्त्विकम् उच्यते** : उसे सात्त्विक कर्म कहा जाता है.

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद् राजसमुदाहृतम्।।

गीता १८-२४

जो कर्म फल की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति के द्वारा अहंकार के साथ बहुत प्रयासपूर्वक किया जाता है उसे राजसिक कर्म कहते हैं.

राजसिक प्रकृति के मनुष्य कोई भी कर्म विशेष फल की आशा से ही करते हैं. इसमें उनका अहंकार प्रबल रहता है. 'यह काम मैं कर रहा हूँ, इसका सारा श्रेय मुझे है' ऐसे विचार सदा उनके मन में रहते हैं. अपने अहंकार की तुष्टि के लिए वे भाग-दौड़ भी बहुत करते हैं. अपने चारों ओर के व्यक्तियों और उनकी गतिविधियों पर निगाह डालने पर हम देखेंगे कि उनमें से बहुतों के कर्मों का उद्देश्य केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं है. अधिकतर लोग अपने अहंकार को संतुष्ट करने के लिए ही निरन्तर व्यस्त रहते हैं. पर अहंकारों की परस्पर टकराहट के कारण जीवन में किसी के भी अहंकार को पूर्ण संतोष कभी नहीं हो सकता. अहंकार और महत्वाकांक्षाओं की इस टकराहट के कारण ही समाज में और विश्व में टकराहट और संघर्ष होते हैं.

यत् कर्म तु : जो कर्म तो, **कामेप्सुना** : अपनी कामनाओं को तृप्त करने की इच्छावाले, **वा पुनः** : या फिर, **साहंकारेण** : अहंकार से युक्त मनुष्य के द्वारा, **बहुलायासं क्रियते** : बहुत प्रयासपूर्वक किया जाता है, **तद् राजसम् उदाहृतम्** : उसे राजसिक कर्म कहा गया है. ■

जारी...

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता

गणित एवं औद्योगिक इंजीनियरिंग में डिग्रियां. तीस वर्षों से मैनेजमेंट के प्रोफेसर. फिलहाल युनिवर्सिटी ऑफ ह्यूस्टन-डाउनटाउन में सेवारत. पचास से अधिक शोध-पत्र विश्व के नामी जर्नल्स में प्रकाशित. दो मैनेजमेंट जर्नल के मुख्य संपादक एवं कई अन्य जर्नल्स के संपादक. हिंदी पढ़ने-लिखने में रुचि. काव्य-लेखन, विशेषकर सामयिक एवं धार्मिक काव्य लेखन में.

सम्पर्क : om@ramacharit.org

प्रश्नोत्तरी

कौन बनेगा रामभक्त

निम्न प्रश्नों के उत्तर तुलसीकृत श्री रामचरितमानस के आधार पर दीजिये.
सही उत्तर अगले अंक में प्रकाशित होंगे.

१. चित्रकूट में राम को मिलने के बाद जनक जी कहाँ गए?
   अ) अयोध्या
   ब) जनकपुरी
   स) किष्किन्धा
   द) लंका

२. जयंत अपने पीछे राम का बाण देखकर सबसे पहले किसके पास गया?
   अ) इन्द्र
   ब) नारद
   स) शिव
   द) रावण

३. नाक-कान कटने के बाद शूर्पनखा सबसे पहले किसके पास गयी?
   अ) रावण
   ब) खर-दूषण
   स) मेघनाद
   द) सुग्रीव

४. ऋष्यमूक किसका नाम है?
   अ) ऋषि
   ब) राक्षस
   स) पर्वत
   द) वृक्ष

५. 'जलनिधि' शब्द का क्या अर्थ है?
   अ) वरुण देव
   ब) समुद्र
   स) शेषनाग
   द) बादल

६. हनुमान सीता को अपने साथ क्यों नहीं ले गए?
   अ) उनके पास रथ आदि कोई साधन नहीं था.
   ब) उनके पास राम की आज्ञा नहीं थी.
   स) समुद्र पार करते हुए सीता के गिरने संभावना थी.
   द) उस समय रावण से उलझना ठीक नहीं समझा.

७. इन घटनाओं में किनका क्रम सही है?
   अ) शबरी भेंट - केवट भेंट - विभीषण भेंट
   ब) केवट भेंट - विभीषण भेंट - शबरी भेंट
   स) विभीषण भेंट - केवट भेंट - शबरी भेंट-
   द) केवट भेंट - शबरी भेंट - विभीषण भेंट

८. 'रामानुज' कौन है?
   अ) रावण
   ब) हनुमान
   स) लक्ष्मण
   द) लव

९. विभीषण अपने कितने सेवकों को साथ लेकर राम की शरण में गया?
   अ) १
   ब) २
   स) ३
   द) ४

१०. 'एक मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अज्ञान' - यह शब्द किसने कहे?
   अ) परसुराम
   ब) लक्ष्मण
   स) हनुमान
   द) वाली

प्रश्नों के उत्तर तुरंत जानने के लिए kbr@ramacharit.org पर आग्रह किया जा सकता है.

नवम्बर २०१२ अंक में प्रकाशित प्रश्नों के सही उत्तर हैं :

१. स, २. स, ३. द, ४. स, ५. स, ६. ब, ७. अ, ८. ब, ९. स, १०. अ.

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

पंचतंत्र

काइयां सियार

किसी जंगल में एक बहुत चालाक सियार रहता था. उसने एक दिन वन में एक मरे हुए हाथी को देखा. वह उसके चारों ओर चक्कर लगाकर अपने पैने दांत गड़ाता रहा पर उसकी कठोर चमड़ी को छेद नहीं पा रहा था. उसी समय कहीं से घूमता-फिरता एक शेर उधर आ निकला. शेर को आता देख वह अपना माथा धरती पर टेककर, दोनों हाथ जोड़कर विनय के साथ बोला, 'स्वामी, मैं आप का पहरेदार सिपाही हूं. यहां बैठकर आप के लिए ही इस हाथी की रखवाली कर रहा हूं. महाराज की बड़ी कृपा जो आन पधारे. अब इसका भोग लगाएं.'

> जिन मित्रों के बीच बहुत एकता होती है, जिनमें कोई किसी से न तो जलता है न किसी का बुरा चाहता है, जो सदाचारी और सर्वगुणसंपन्न होते हैं, वे भी भेद के चक्कर में फंस ही जाते हैं.

उसे इस प्रकार मिन्नत करके देखकर शेर बोला, 'मैं किसी दूसरे के शिकार किए हुए जानवर को नहीं खा सकता. सवाल केवल पेट भरने का नहीं, मान-मर्यादा का भी है. कहते हैं, शेर वन में भूखा हो तो भी जानवरों का मांस ही खाता है, घास नहीं चरने लगता. इसी तरह कुलीन लोग बुरे दिन आने पर भी उचित-अनुचित का विचार नहीं खोते. तुम समझ लो कि मैंने अपनी ओर से यह हाथी तुम्हें इनाम में दे दिया.'

यह सुनकर सियार झूम उठा. उसने कहा, 'स्वामी ने अपने सेवक के लिए जो कुछ किया वह आप ही को शोभा देता है. शंख को आग में जलाकर भस्म कर दिया जाए तो भी वह धवलता को नहीं त्यागता. इसी तरह महान लोग बुरे समय में भी अपने मन की निर्मलता और कुल की आन को नहीं छोड़ते.'

शेर के चले जाने के बाद कोई बाघ अपनी बाघिन के साथ उधर आ निकला. उसे देखकर सियार सोचने लगा, अभी तो मैंने एक दुष्ट को जैसे-तैसे फुसला बहला कर यहां से हटाया है अब इस दूसरे को कैसे भगाऊं! यह शेर से अधिक लड़ाका है. भेदनीति के बिना इससे पार नहीं पाया जा सकता. कहते हैं जहां समझाने-बुझाने या कुछ दे दिवाकर काम बनता न दिखाई दे वहां शत्रुओं के बीच फूट डालकर उन्हें वश में कर लेना चाहिए.

कहते हैं, मोती को छेदना आसान नहीं है. वह बाहर से एकदम गोल और मनोहर दिखाई देता है पर होता बहुत कठोर है फिर भी उसमें पहले से छेद बना हो तो उसे धागे में पिरोने में कोई कठिनाई नहीं होती. उसी तरह जिन मित्रों के बीच बहुत एकता होती है, जिनमें कोई किसी से न तो जलता है न किसी का बुरा चाहता है, जो सदाचारी और सर्वगुणसंपन्न होते हैं, वे भी भेद के चक्कर में फंस ही जाते हैं.

यह सोचकर वह सियार बाघ के सामने जा खड़ा हुआ और अपनी गर्दन उचकाकर डरने का नाटक करता हुआ बोला, 'मामाजी, आप यहां मौत के गाल में कैसे चले आए? इस हाथी का शिकार करने वाले शेर ने मुझे इसकी पहरेदारी पर लगा रखा है. वह अभी नदी में नहाने गया है. उसने जाते-जाते मुझे हुकुम दिया कि यदि कोई बाघ यहां आए तो तुम चुपचाप आकर मुझे बता देना. मैं आकर बाघों का सफाया कर डालूंगा. इससे पहले भी मेरे एक शिकार को एक बाघ ने आकर खाकर जूठा कर दिया था. उसी दिन से मैं बाघों को सबक सिखाना चाहता हूं.'

बाघ ने कहा, 'अरे भानजे, मेरी जान बख्श. तू शेर के आने के बाद भी उससे मेरी शिकायत न करना.' यह कहकर वह वहां से खिसक लिया.

अब उसके चले जाने के बाद एक चीता आ गया. उसे देखकर शियार ने सोचा, इसके दांत तो बहुत मजबूत हैं. ऐसा जतन करूं कि यह हाथी के चमड़े को तो फाड़ डाले, पर खाने न पाए. यह ठानकर उसने चीते से कहा, 'भानजे, तुम तो दूज के चांद हो गए. दिखाई ही नहीं देते. आज किधर से आ निकले? तुम तो कुछ भूखे भी दिखाई दे रहे हो. फिर मेरे

अतिथि भी ठहरे. सिंह का शिकार किया हुआ यह हाथी तो तुम्हारे सामने है ही. सिंह ने मुझे ही इसकी चौकसी पर लगा रखा है इसलिए डरने की भी कोई बात नहीं. उसके वापस आने से पहले ही जितना जी चाहे खाओ और खाकर चुपके से खिसक लो.'

चीता बोला, 'मामा, यदि ऐसी बात है तो मैं तो इस मांस को खाने से रहा. जीता रहा तो ऐसे सैकड़ों मौके आएंगे. इसलिए मैं तो यहां ठहरना भी उचित नहीं चाहता. मैं वहीं कुछ खाना चाहता हूं जो खाने के बाद पच जाय. यह मांस मेरे लिए कुछ अधिक भारी पड़ेगा, इसलिए मैं तो यहां से चला.'

सियार ने कहा, 'अरे कायर, तू निडर होकर जितना खाना चाहे खा ले. मैं हूं न मैं उसको दूर से ही आता देखकर तुम्हें चौकन्ना कर दूंगा. उस बीच तुम भाग निकलना.'

अब सियार की बातों में आकर चीते ने हाथी की चमड़ी को फाड़ दिया. जैसे ही सियार को पता चला कि चीते ने चमड़ी फाड़ दी है, वह दूर से ही बोला, 'भानजे, भागो, सिंह आ रहा है.'

चीता अपनी जान बचाकर भागा.

उस फटे हुए भाग में अपने दांत गड़ाकर उसने मांस खाना शुरू ही किया था कि तभी एक दूसरा सियार वहां आ पहुंचा और चतुरक को अकेले हाथी का मांस खाते देखकर आग उगलने लगा. चतुरक ने देखा कि यह तो उसकी ही बिरादरी का जीव है. बल और बूते में उसी के बराबर. उसे लाल-पीला होते देखकर चतुरक ने वही श्लोक पढ़ा जिसे मैंने अभी तुम्हें सुनाया था और फिर वह उसके ऊपर टूट पड़ा और अपने पैने दांतों से उसको जगह-जगह चीर कर रख दिया और फिर आराम से लंबे समय तक उस हाथी का मांस अकेले ही खाता रहा. इसीलिए मैं भी तुमसे कहता हूं कि यदि शत्रु तुम्हारी ही जाति का है तो उससे डरना क्या और साम-दाम की बात क्या करनी. जाओ और उस पर हमला बोल दो. यदि उसने वहां अपनी जड़ें जमा लीं तो तुम उसे वहां से हटा नहीं पाओगे. कहते हैं, जैसे गायों में संपत्ति होती है, ब्राह्मण में तप होता है, स्त्रियों में चंचलता होती है उसी तरह सभी प्राणियों में अपनी बिरादरी का डर भी होता है.

'तुमने वह कहावत तो सुनी ही होगी कि विदेश में धन-दौलत तो खूब है इसलिए वहां जाने से बहुत-सी सुविधाएं मिल जाती हैं. नगर में स्त्रियाँ भी कुछ बेपरवाह होती हैं इससे खास रोक टोक नहीं करतीं. घरों में घुसने का मौका भी मिल जाता है. पर एक ही बुराई है, वहां अपनी बिरादरी वाले ही जान के दुश्मन हैं.'

बात कुछ उलटबांसी जैसी लगी इसलिए घड़ियाल ने कहा, 'अपनी जाति वाले दुश्मन कैसे हो सकते हैं?'

बंदर ने जो कहानी सुनाई वह एक कुत्ते की थी.■

60 MILLION
CHILDREN IN INDIA
have no means to go to school

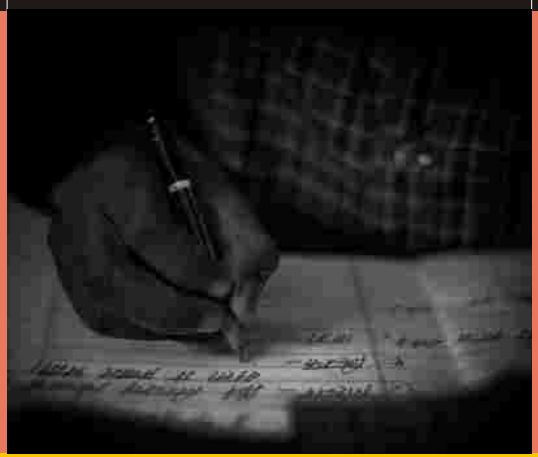

Contribute just Rs. 2750*
and send one child to school
for a whole year

Central & General Query
info@smilefoundationindia.org
http://www.smilefoundationindia.org/contactus.htm

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

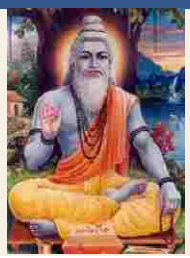

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

महाभारत

पितामह और कर्ण

जब कर्ण को यह पता चला कि भीष्म पितामह घायल होकर रणक्षेत्र में पड़े हैं तो वह उनके पास गया. उनको दंडवत प्रणाम किया और बोला, 'पूज्य कुलनायक! सर्वथा निर्दोष होने पर भी आपकी घृणा का पात्र बना हुआ यह राधा-पुत्र कर्म आपको प्रणाम करता है.'

प्रणाम करके जब कर्ण उठा तो पितामह को उसके मुख पर भय की छाया-सी दिखाई दी. यह देखकर भीष्म का दिल भर आया. बड़े प्रेमपूर्वक कर्ण के सिर पर उन्होंने हाथ रखा और आशीर्वाद दिया और चुभे हुए बाणों से होने वाले कष्ट को दबाकर बोले- 'बेटा, तुम राधा के पुत्र नहीं, देवी कुन्ती के पुत्र हो. यह मुझे संसार का सारा मर्म जानने वाले नारदजी ने बताया है. सूर्यपुत्र! मैंने तुमसे द्वेष नहीं किया. अकारण ही तुमने पांडवों से बैर रक्खा. इसी कारण तुम्हारे प्रति मेरा मन मलिन हुआ. तुम्हारी दान-वीरता और शूरता से मैं भली-भांति परिचित हूं. इसमें कोई संदेह नहीं कि शूरता में तुम कृष्ण और अर्जुन की बराबरी कर सकते हो. तुम पांडवों के जेठे हो. इस कारण तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम उनसे मित्रता कर लो. मेरी यही इच्छा है कि युद्ध में मेरे सेनापतित्व के साथ-ही-साथ पांडवों के प्रति तुम्हारे वैर-भाव का भी आज ही अन्त हो जाये.'

> *पितामह! मैं जानता हूं कि मैं कुंती का पुत्र हूं. यह भी मुझे मालूम है कि मैं सूत-पुत्र नहीं हूं. परन्तु फिर भी दुर्योधन से जो मैंने संपत्ति प्राप्त की है, उसके कारण मैं उसकी सहायता करने को बाध्य हूं.*

यह सुन कर्ण बड़ी नम्रता के साथ बोला- 'पितामह! मैं जानता हूं कि मैं कुंती का पुत्र हूं. यह भी मुझे मालूम है कि मैं सूत-पुत्र नहीं हूं. परन्तु फिर भी दुर्योधन से जो मैंने संपत्ति प्राप्त की है, उसके कारण मैं उसकी सहायता करने को बाध्य हूं. यह बात मुझसे नहीं हो सकती कि अब मैं दुर्योधन का साथ छोड़ दूं और उनके शत्रुओं से जा मिलूं. मेरा कर्त्तव्य यही है कि दुर्योधन के ही पक्ष में रहकर युद्ध करूं. आप कृपया मुझे इस बात की अनुमति दें कि मैं दुर्योधन की तरफ से लड़ूं. मैंने जो कुछ किया या कहा, उसमें जितने दोष हों, उसके लिये मुझे क्षमा कर दें.'

कर्ण का कथन भीष्म बड़े ध्यान से सुनते रहे. उसके बाद बोले- 'जो तुम्हारी इच्छा हो, वही करो. जीत धर्म की होगी.'

भीष्म के आहत होने के बाद भी महाभारत का युद्ध बंद नहीं हुआ. पितामह ने सबके हित के लिए जो सलाह दी, कौरवों ने उस ओर ध्यान नहीं दिया और युद्ध जारी रहा.

भीष्म के बिना कौरवों की सेना ठीक उसी तरह असहाय जान पड़ी जैसे गड़रिये के बिना भेड़-बकरियों का झुण्ड. सत्य पर अटल रहने वाले भीष्म के आहत होते ही सभी कौरव एक स्वर से बोल उठे- कर्ण! अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो.'

कौरवों ने सोचा कि कर्ण के युद्ध में सम्मिलित हो जाने पर अतएव हमारी ही जीत होगी. जब तक भीष्म सेनापति बने रहे तब तक कर्ण ने युद्ध में भाग नहीं लिया. भीष्म ने कर्ण का दर्प दूर करने के विचार से जो कुछ कहा था, उस पर बिगड़कर कर्ण ने शपथ खाकर कहा था कि जब तक भीष्म जीवित रहेंगे तब तक मैं युद्ध नहीं करूंगा. अगर उनके हाथों पांडवों का वध और दुर्योधन की जीत हो जायेगी तो मैं दुर्योधन की आज्ञा लेकर वन में चला जाऊंगा और अगर वह युद्ध में हार गये और वीरोचित स्वर्ग को प्राप्त हो गये तो उस समय मैं अकेला ही लड़कर सारे पांडवों को युद्ध में परास्त करके दुर्योधन को युद्ध में विजेता का यश दिलाऊंगा.

दस दिन पहले जिस कर्ण ने यह शपथ खाई और दुर्योधन की सहमति से उसे निभाया था, वही कर्ण आज युद्ध में आहत भीष्म के पास पैदल दौड़ा गया और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला- 'परशुराम को परास्त करने वाले वीर! आज आप शिखंडी के हाथों आहत होकर इस युद्धभूमि में पड़े हैं. धर्म के शिखर माने जाने वाले आप जैसे महात्मा का जब यह हाल हुआ तो इसका यही अर्थ हो सकता है कि संसार में पुण्य का फल किसी को प्राप्त नहीं होता. कौरवों को संकट की बाढ़ से पार लगाने वाली नौका से सदृश थे आप! अब आपके बिना पांडवों के हाथों कौरवों को भारी पीड़ा पहुंचने वाली है. इसमें कोई संदेह नहीं कि कृष्ण और अर्जुन उसी प्रकार कौरवों का सर्वनाश कर देंगे जैसे पवन और अग्नि मिलकर जंगल का नाश करते हैं. आपसे प्रार्थना है कि आप अपनी कृपादृष्टि मुझ पर डालकर अनुगृहीत करें.'

महात्मा भीष्म कर्ण को आशीर्वाद देते हुए बोले- 'कर्ण! जिसने भी तुम्हें अपना मित्र बना लिया, उसको तुम वैसे ही सहारा दिया करो जैसे नदियों को समुद्र, बीजों को मिट्टी और प्राणियों को मेघ. अब दुर्योधन की तुम्हीं रक्षा करना. जिसके लिये तुमने कांभोजों को जीता था, हिमालय के दुर्गों पर बसे हुए किरातों को कुचल डाला, जिसके लिये गिरिब्रज के राजाओं से लड़कर विजय प्राप्त की और जिसके लिये और भी कितने ही प्रतापी कार्य किये हैं, उसी दुर्योधन की सेना के अब तुम ही रक्षक बनकर रहना. तुम्हारा कल्याण हो. जाओ, और शत्रुओं से युद्ध करो. कौरवों की सेना को अपनी ही संपत्ति समझकर उसकी रक्षा करो.'

भीष्म पितामह से आशीष पाकर कर्ण बहुत प्रसन्न हुआ और रथ पर चढ़कर युद्धक्षेत्र में जा पहुंचा. कर्ण को देखते ही दुर्योधन आनन्द के मारे फूल उठा. भीष्म के विछोह का जो दुख उसके लिये दुःसाहस प्रतीत हो रहा था, अब कर्ण के आ जाने पर किसी तरह उसे भूल जाना उसके लिये संभव मालूम होने लगा. ■

Who Are You Calling Old?

Proud2B60 :

is a special campaign by Help Age India.

Millions of people are living their later years with unprecedented good health, energy and expectations for longevity.

Suddenly, traditional phrases like "old" or "retired" seem outdated. Help Age's "Who Are You Calling Old?" campaign presents the many faces of this New Age.

New language, imagery, and stories are needed to help older people and the general public re-envision the role and value of elders and the meaning and purpose of one's later years. This campaign is about leading this change. It is about combating the negative image of the frail, dependent elder.

General Query

http://www.helpageindia.org

मानिक बन्द्योपाध्याय

(९ मई १९०८ - ३ दिसम्बर १९५६)

आधुनिक बांग्ला कथा साहित्य के अग्रणियों की पहली पंक्ति में अन्यतम. लगातार बीमारी तथा अभाव से जूझते हुए कुल ४८ साल की उम्र में ३६ उपन्यास एवम् १७७ छोटी कहानियाँ लिखीं. अपनी रचनाओं में जटिल मानव मनोविज्ञान एवम् ग्रामीण जीवन के यथार्थ की गहराई से पड़ताल की. आज भी उनकी साधारण कहानियाँ पाठक को आश्चर्यचकित कर देती हैं. उनकी कहानियों के चरित्रों की पहचान वे अपने आसपास के लोगों में सहजता से करने लगते हैं. उनकी रचनाएँ अद्‌भुत भाषाशिल्प एवम् वर्णन शैली से सहजता से संप्रेषण कर पाती हैं. 'पद्मानदीर माँझी' उनके प्रतिष्ठित उपन्यासों में सर्वाधिक चर्चित रही है.

अनुवाद

बांग्ला से हिन्दी अनुवाद गंगानन्द झा

बूढ़ी

बूढ़ी का बड़ा परपोता आज विवाह करने जाएगा. बेटे का बेटे का बेटा और फिर उसका बेटा, कोई ऐसी वैसी बात है क्या? बूढ़ी को शामिल किए बगैर ही अपने लोगों, परिजनों से भरे घर में घर के लड़के की शादी में जितना हंगामा हुआ करता है, उसी तरह हो रहा है, जैसे संसार का साधारण काम उसको बाद देकर हुआ करता है. फिर भी मानो बूढ़ी सब कुछ में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में हाजिर है जैसे हर रोज की जीवनयात्रा में हाजिर रहती है, अपनी साठ सालों की जीवन्त उपस्थिति के अभ्यस्त, बड़े कमरे के पश्चिम की ओर सूखे पेड़ की तरह, जिसके ऊपर दिन भर चिड़िया किचिर मिचिर किया करती है और सोई रात को टूटी-फूटी हवा मरमर की आवाज पैदा करती है.

कथरी की पोटली और पत्थर की तरह सख्त तकिया लिये हुए बूढ़ी बरामदे के किनारे बैठी रहती है, बरामदे की चाल नीचे झुकी हुई है. जंग लगी कमर, टेढ़ी हो गई पीठ, सन की तरह केसर के केश, ढीला चमड़ा, पोपला मुँह, पिचके गाल और मोतियाबिंद से धुँधलाई आँखें. बूढ़ी लाठी लेकर पा पा कर चल फिर सकती है. ज्यादातर समय लेटी या बैठी ही रहती है, बिड़-बिड़ करती रहकर समय काटती है. लगता है कि अभी शरीर में जोर घटा नहीं है, काफी जोर से चिचिया सकती है. रह-रहकर गृहस्थी की छोटी मोटी गड़बड़ियों की शिकायत करती रहती है. जले हुए तम्बाकू पत्ते का चूरा

चबाती रहती है. बीच-बीच में बेवजह अजीब आवाज में खिलखिला कर हँसती है.

'मरण' उसकी नतबहुएँ कहती हैं, कोई जोर से, तो कोई नीची आवाज में. नीची आवाज में नई बहुएँ बोलती हैं, बूढ़ी का लिहाज करके नहीं, बूढ़ी सुन भी ले तो उनको कुछ फर्क नहीं पड़ता. बूढ़ी सुन पाती है तो अनसुना कर देती है, न भी करे तो किसी को परवाह नहीं है. छोटे मुँह बड़ी बात सुनकर सासु-ननद लोग चिढ़ जाएँ, इसी डर से, बस.

नन्द ने निताई प्रामाणिक से नए फैशन के बाल कटवाए हैं. निताई ने नगद आठ पैसे बसूल कर लिए हैं, उसका बेटा बर के साथ बारात में

> *इतने दिनों तक तुम पति के साथ सोई, घर की बहू होकर रही. तुमको जाने कहे कोई और तुम चली जाओगी? मिट्टी पकड़कर रहो. खूँटी थामे रहो.*

जाएगा, कितना क्या कुछ पाएगा, फिर भी. घर के सात जनों ने इस बात को लेकर निताई को कितना अच्छा बुरा कहा है. इस तरह दिन दोपहर डकैती ये लोग नहीं सह पाते.

बूढ़ी परपोते को पुकारती है, ऐ नन्द! ऐ बावरे छोकरे, सुनो इधर सुनो, एक बात कहती हूँ. ब्याह तो करेगा छोकरे, लड़की कुमारी है तो?

नन्द की माँ ने सुन लिया, उसने अपनी गोतनी को कहा, 'मरण, सुनो बूढ़ी की बातें.' फिर चिन्तित होकर भौएँ सिकोड़ती हुई बोली, 'कुमारी क्यों नहीं होगी लड़की सयानी हो गई है, सुना है.'

घर अच्छा है.

अच्छे घर में ज्यादा गड़बड़ी होती है. बेटी को सयानी होने तक घर में बैठा कर क्यों रखते हैं?

बूढ़ी के सामने उँकड़ू होकर बैठकर नन्द ने कहा, कुमारी नहीं तो क्या तुम्हारी तरह बूढ़ी?

> मुझको भगा सका है कोई? एक रात पति का घर नहीं किया मैंने, विवाह की रात को ही छटपटाकर मरा वह. सबों ने कहा, दुर, दुर मैं गई? यहाँ की मिट्टी पकड़कर बैठी रही.

धरती भर ढूँढ़कर मेरी तरह की कुमारी नहीं मिलेगी तुम्हें. एक रात भी सोई हूँ तुम्हारे दादा के साथ? विवाह की रात को ही फौंस-फौंस कर तुम्हारे दादा ने छँलाग लगाई थी न. सचमुच वह एक काण्ड था. फौंसफौंसानी सुनकर मैं डर के मारे जोर-जोर से रोने लग गई- दरवाजा खोलकर बाहर जाकर. सारे घर के लोग दौड़े आए. क्या हुआ, क्या हुआ? होगा क्या मेरा कपाल. इतनी देर में बूढ़े का सब कुछ हो चुका था. बूढ़ी खिलखिलाकर हँसने लगी.

लेकिन परपोता नहीं हँसा उसके परपोते के चेहरे पर दुविधा, सन्देह और अविश्वास का हल्का बादल. देह थोड़ी टेढ़ी कर बोला, हो सकता है, खूब सयानी लड़की है, कोई ठिकाना हो सकता है क्या?

बूढ़ी ने गाल पर हाथ रखकर कहा, मरो बन्दर कहीं के, तुमने खुद ही सयानी लड़की देखकर ही पसन्द किया है न?

सो तो किया था.

बेवकूफ, बुद्धू बदमाश! कुमारी लड़की नष्ट होती है? मैं नष्ट हुई हूँ? ब्याह की रात को दुल्हा मरा, जैसे-जैसे दिन बीतते रहे मुझे नष्ट करने की लोगों की कोशिशें बढ़ती गईं, मैं नष्ट हुई? कुमारी नहीं हूँ तो तुम्हारे बाप का क्या? लड़की खराब होती है स्वाद पाकर, कुमारी क्या खराब होती है, दोगले कहीं के! मरण हो तुम्हारा! दुर्गा, दुर्गा! तुम्हारी बला लेकर मैं मरूँ.

सच कहती हो?

चेहरे पर छाए बादल को चीर कर रोशनी फैलाते हुए परपोते ने कहा.

तो और क्या!

काम और फुरसत के बीच में सबों ने देखा नन्द उँकड़ू बूढ़ी के सामने बैठा है तो बैठा ही है. दोनों की बातें खत्म होने को नहीं आतीं. ऊपर से रह-रह कर दोनों ही खिलखिलाकर कर ही-ही कर हँसते रहते हैं.

मेनका फूली-फूली आँखों से रोती और कहती, कहाँ जाऊँगी मैं? किसके पास जाऊँगी? मेरा कौन है?

नन्द की दुल्हन घर के लोगों को पसन्द नहीं आई. एक तो सयानी लड़की, ऊपर से दूर के रिश्ते में मामा के घर पली, विवाह में देना पावना अच्छी तरह नहीं जुटा, उसके धोखेबाज मामा ने जितने गहने देने की बात कही थी, मेनका वह भी लेकर नहीं आई. ऊपर से नन्द ने घर के राय की परवाह न करके अपनी पसन्द से विवाह किया था. विवाह कर घर के लोगों के मत की परवाह न करके उसे सर पर चढ़ा कर रखा था. विवाह के बारे में लड़के की मनमानी की ज्वाला मनुष्य के मन में बनी रहती है. कमाऊ पूत के ऊपर तो मन की जलन मिटाई नहीं जा सकती.

ऊपर से ब्याह के एक साल के अन्दर ही नन्द की मौत हो गई. बारिश खत्म होने पर जब आँगन का कीचड़ का सूखना शुरू हुआ था, घर के लोगों के साथ झगड़ा कर जब पत्नी को साथ लेकर दो महीने की सैर के लिए पश्चिम जाने की तैयारी कर रहा था. इस घर की कोई बहू आज तक कभी भी कहीं भी नहीं गई थी.

ऐसी कुलच्छनी बहू को घर में कौन रखेगा?

मेनका के मामा को लिखा गया था उसको लिवा जाने के लिए. उन्होंने जवाब भी नहीं दिया. इसीलिए चरवाहे के साथ उसको भेज देने की तैयारी हो रही थी. मामा के घर के दरवाजे पर उसको उतार कर चरवाहा चला आएगा, उसके बाद जो होगा, मेनका और उसके मामा समझें.

लेकिन मेनका जाने को राजी नहीं थी. मामा घर में सिर्फ मारधाड़ या गर्म करछुल से छेंका लाए जाने का डर रहता तो गनीमत थी, उसे पता था कि उसको मामा घर में घुसने ही नहीं दिया जाएगा. दरवाजे से ही उसे रास्ते पर उतरना पड़ेगा.

इसीलिए मेनका फूली-फूली आँखों से रोती और कहती, मैं कहाँ जाऊँगी? किसके पास जाऊँगी?

चबूतरे पर बैठी बूढ़ी ने पुकारा, ऐ छोकरी! सुनो.

मेनका पास में आकर खड़ी हुई.

रोती क्यों है, जवान औरत?

मुझे भगा दे रहे हैं ये लोग.

भगा दे रहे हैं? कौन भगा रहा है? भगा देने से ही तुम जाओगी? तुम्हारे ससुर का घर है, कौन भगाएगा तुमको?

मेनका चुप रही.

मुझको भगा सका है कोई? एक रात पति का घर नहीं किया मैंने, विवाह की रात को ही छटपटाकर मरा वह. सबों ने कहा, दुर, दुर मैं गई? यहाँ की मिट्टी पकड़कर बैठी रही. कोई भगा सका मुझको? इतने दिनों तक तुम पति के साथ सोई, घर की बहू होकर रही. तुमको जाने कहे कोई और तुम चली जाओगी? मिट्टी पकड़कर रहो. खूँटी थामे रहो.

मेनका की आँखों में फिर से रोशनी दिखाई पड़ी. वह बूढ़ी के सामने उँकडु होकर बैठ गई. घर के सब लोग टकटकाकर देखते रहे मेनका और बूढ़ी के बीच गुजगाज, फिसफास बातें चल रही हैं तो चल ही रही हैं, जैसे बातों का अन्त नहीं.■

गोपाल बघेल 'मधु'

जुलाई १९४७ में मथुरा में जन्म. एन.आई.टी. दुर्गापुर से यांत्रिक अभियांत्रिकी व ए.आई.एम.ए. नयी दिल्ली से प्रबंध शास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि. २४५० से अधिक आध्यात्मिक कविताओं का ८ भाषाओं में सृजन. २२५ कविताएँ, रोमन संस्कृत व अंग्रेजी प्रारूप के साथ 'आनन्द अनुभूति/Perception of Bliss' में प्रकाशित. सम्प्रति - अखिल विश्व हिंदी समिति, आध्यात्मिक प्रबंध पीठ व ग्लोबल फाइबर्स के निदेशक व अध्यक्ष हैं.

संपर्क : टोरोंटो, ओंटारियो, कनाडा. ईमेल - gpbaghel@gmail.com वेबपेज - www.GopalBaghelMadhu.com

कविता

स्वर्ग की सुविधा लिये दुविधा लिये

स्वर्ग की सुविधा लिये दुविधा लिये
मर्म की मृदु कल्पना को स्वर दिये
कर्म भूमि में प्रखर कम्पन किये
धर्म की दहलीज़ पर दोलन दिये

ज्योति उर में जलाये हम चल दिये
द्योति को उद्यत किये शुभ सुर दिये
सुनहरी आभा लिये क्षुध उर लिये
दुपहरी की धूप को आलम दिये

ज्वर रहे कितने उतर भागा किये
स्वर प्रखर प्रकटा किये प्रश्रय दिये
चिन्मयी चेष्टा घटा काटा कियी
तन्मयी दृष्टि छटा अद्‌भुत कियी

जिन्दगी की सब निशाएं ढल गयीं
बन्दगी की सब बुलन्दी फुर गयीं
सादगी की संस्कृति भास्वर हुयी
सुहृदयता की सुगँधि मन्द्रित हुयी

प्रलोभन से भरे मन प्रस्फुट हुये
प्रदूषण से मुक्त पुष्प सभी हुये
विकट भ्रष्टाचार जग से मिट गये
प्रभु नयन से 'मधु' नयन जब मिल गये.

■

अखिल है खिलने लगा अब

अखिल है खिलने लगा अब, जग मेरे में, मग मेरे में
जगमगाकर मन चमन में, उषा की शालीनता में

तत्व के हर तरन्नुम में, वित्त के हर विहंगम में
नीति की हर नज़ाकत में, प्रीति की हर सदाकत में

विश्व का हर स्वार्थ ढलता, तिलमिला कर सूक्ष्म होता
घुलघुला कर विरल होता, त्वरित होकर विरत होता

विकलता हटने लगी है, कलुषता कटने लगी है
तामसी मन की तमिस्रा, सात्विकी रंग में ढली है

स्वप्न में उद्‌गार आते, जागरण में ज्वार आते
'मधु' प्रज्ञा प्रखर है अब, प्रभु के चैतन्य स्वर में।

■

डॉ. मृदुल जोशी

२१ अगस्त १९६० को काठगोदाम, उत्तराखण्ड में जन्म. एम.ए., पीएच.डी., विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, शोधालेख, साक्षात्कार, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशित. 'गुम हो गए अर्थ की तलाश में' काव्य संग्रह, अनेक शोध प्रबन्ध, चयनित कहानियाँ (सम्पादन), मर्म चिकित्सा विज्ञान, मर्म विज्ञान एवं चिकित्सा (अनुवाद) प्रकाशित. सारस्वत-सम्मान से सम्मानित. बैंकॉक, मॉरीशस, नेपाल, बेल्जियम, जापान आदि देशों में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में सहभागिता. सम्प्रति - 'मृत्युंजय प्रवाह' का सम्पादन. गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के हिन्दी विभाग में अध्यापनरत.

संपर्क : ५, माँ आनन्दमयीपुरम्, कनखल, हरिद्वार-२४९४०८ ईमेल : dr_mriduljoshi@yahoo.com

आओ, आज ज़िन्दगी जी लें!

आओ, आज ज़िन्दगी जी लें!
किरणों की तारें छेड़
मीड़, तोड़ों, तानों में
लरज-लरज
कुछ गीत सुनहले गाता है सूरज
सुध-बुध खो लें!

मीठी ख़ामोशी में घुल-मिल
रतजगी चाँदनी
बरसी है
झम-झम, झम-झम
तन-मन भर लें!

रंग-बिरंगी पोशाकों में
सजे-धजे
प्यारे पंछी
जिन प्यारी-प्यारी बातों में
डूबे
छुपकर सुन लें!

यह उछल-कूदती नदिया
नन्हीं बिटिया-सी
दौड़ दौड़ कुछ ढूँढ रही है
इधर-उधर
हम भी ढूँढ़ें!

बच्चों की किलकारी-सी
बिखरी-बिखरी मासूम महक
इन फूलों की
आओ छू लें!

इस धरती में हैं बचे बहुत
कहने-सुनने-गुनने के गुन
फिर यूँ ही रात-दिवस रीतें!
कुछ तो सँभले!

क्या रखा उलझती बातों में
क्या लाभ घात-प्रतिघातों में
ये बातें सब बेमानी हैं
हम सीधे-सादे सरल बनें!
आओ, आज ज़िन्दगी जी लें!
■

पंकज कुमार अग्रवाल
कानपुर में जन्म. डी.ए.वी. कालेज, कानपुर से भौतिकशास्त्र में स्नातकोत्तर. हिन्दी साहित्य में गहन रुचि. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित. सम्प्रति - ओ.एन.जी.सी. से मुख्य भू-भौतिकविद के पद से सेवा-निवृत्त.
सम्पर्क : pankajkumar49@yahoo.co.in

कविता

यह कैसी जिंदगी

यह सब क्या हो गया
मनुष्य जन्म निस्सार हो गया
क्या-क्या अरमान उमड़े-घुमड़े
घुल गए आज के हालातों में

अनेकों विचारों का मालिक हूँ
पर इन पर मालिकाना हक
किसका है नहीं जनता
क्योंकि छिन गए सभी विचार

दिल और दिमाग से खाली हूँ
फिर रहा हूँ मारा-मारा
निरुद्देश्य बहती यह जिन्दगी
खोज रही अंतिम सहारा

क्यों बनाया मुझे
खिलौने-सा क्यों घुमाया मुझे
जिन्दा ही क्यों मार दिया मुझे
क्या खुदा का यह मजाक था

अगर मजाक था यह सब
तो मजाक ही रहने देता
लेकिन हँस-हँस कर
गमगीन क्यों बनाया इसे?
■

यादों की साधना

न भुला पाऊँगा उन यादों को
मुस्कराहट से जो तूने पिलाई
उस सौन्दर्य बोध की कल्पना
हर क्षण जो तुमने कराई

तिरछे नैनों की चितवन से
जब था तुमने मुझे निहारा
उसी पल से तुमसे दीदार करने को
फिर रहा मारा-मारा

मीठे बोल जो तुमने मुझे सुनाए
वे कानो के रास्ते दिल में समाये
न बिसरा पाऊँगा उन लम्हों को
जो साथ बिताये

तुम्हारी यादों का सिलसिला
हिले न हिलाए
मेरे सुखमय जीवन की तू सरस साधना
हर पल ईश्वर से करूँ यह आराधना.
■

डॉ. सुरेन्द्र मीणा
१७ अप्रैल १९७७ को नागदा, मध्यप्रदेश में जन्म. राजनीतिक विज्ञान एवं हिन्दी साहित्य में एम.ए., नेट, पी.एच.डी. आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर कविताओं एवं आलेखों का प्रसारण. सम्प्रति - आदित्य बिरला समूह की नागदा स्थित ग्रेसिम इकाई में कार्यरत.
सम्पर्क : डी/१६ बिरलाग्राम नागदा जिला उज्जैन (म.प्र.) ४५६३३१ ईमेल - drsurendram17@gmail.com

अतृप्त मन

अगाध, असीम परिकल्पनाओं के परे
आज भी अतृप्त मन
कुछ अनछुए पहलुओं के बीच
तुम्हें महसूस करना चाहता है
शब्द शून्य होकर

शब्दों की परिधि से निकलकर
रूपहले सपनों में बस
पंख लगाना चाहता है
बावरा मन

यह अतृप्त-सा मन
तुम्हें देना चाहता है
अभिव्यक्ति मौन-सी
चिर स्थायी-सी.
■

कैकेयी

कैकेयी तुम
दशरथ की प्राणहर्ता हो
तुम राम के
पाँव के छालों की वजह हो
तुम जनक पुत्री को
बियाबान पगड़ंडियों पर
चलने के लिए मजबूर करती
एक निर्दयी शक्ति स्वरूपा हो
तुम उर्मिला के पति वियोग की
जीवन्तता हो
तुम संसार में
वियोग प्रमाद की पर्याय हो
तुम भरत की जननी हो
तुम सिर्फ एक माँ हो
तुम सहज, सरल, नयन
तरल उज्जवला हो
तुम मंथरा की स्वामिनी हो
तुम कुंठित-सी स्त्री प्रतिबिम्ब हो
फिर भी तुम युग संरक्षण की
सूक्ति हो
नीलकंठ हो, विरोध सशक्ति का
प्रतिरूप हो
क्योंकि तुम कैकेयी हो
एक सशक्त स्त्री, सुदृढ़ स्त्री
और सिर्फ एक माँ.
■

डॉ. सुधा गुप्ता

जन्म १८ मई, १९३४ को जन्म. एम.ए. हिन्दी (प्रथम श्रेणी, प्रथम पद), पी.एच.डी., डी.लिट., ३५ पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें पंद्रह हाइकु संग्रह, आत्मकथा-सूरज के नाम पाती, सात काव्य संग्रह, दो गीत-संग्रह, तीन बाल गीत संग्रह, तीन समीक्षा ग्रन्थ, चार सम्पादित ग्रन्थ. कनोहरलाल कन्या डिग्री कालिज मेरठ में लगभग २४ साल प्राचार्या रहीं. सम्प्रति - स्वतन्त्र लेखन.

सम्पर्क : १२०, बी/२, साकेत, मेरठ-२५०००३ ईमेल - dr.sudhagupta.meerut@gmail.com

कविता

मेला उठा

मेला उठा, धूल उड़ी
लो, हम भी चल दिये
कही-सुनी माफ़ करना

कुछ दिन का बदा था
यहाँ संग-साथ
खट्-मिट्ठी, भली-बुरी
सब रखना याद
चाहा तो कभी नहीं
दिल तुम्हारा दुखाना
भूल कभी अनजाने
हुई हो, माफ़ करना

हम भोली माटी के
मासूम-से खिलौने
खेला, तोड़ फेंका फिर
दोष लगे देने
ओठों को सींकर
दुख सारे पीकर
हम चुप रहे
देते रहे तुम ही इल्ज़ाम
हमारा इंसाफ़ करना.
■

दिन भीगे सुग्गे-सा

दिन भीगे सुग्गे-सा
बोला राम-राम
कनकुतरी चुहिया-सी आ बैठी शाम
शाम ओ सबेरे का अनबोला ठहरा
तम बढ़ता गया बस
गहरा और गहरा
जागरण गठरिया के बोझ से
कुब्जा हुई रात यह अनाम

मुँह लगी सेविका-सी
चाँदनी जो आई
प्यार के दो बोल नहीं
झिड़की ही पाई

तितर-बितर सपनों के
पंख लावारिस उड़ते फिरे
चोटिल हो गए डैने
न जाने कब किधर गिरे
नींद-हँसी-गीत-प्रीत
सब हुए नीलाम.
■

चंद्रभान भारद्वाज

४ जनवरी १९३८ को गोमत, अलीगढ़, उत्तरप्रदेश में जन्म. आगरा विश्वविद्यालय से वाणिज्य में स्नातक एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से साहित्य विशारद. हिंदी ग़ज़लों एवं गीतों के आधा दर्जन संग्रह प्रकाशित. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में में रचनाएँ प्रकाशित. आकाशवाणी इंदौर से रचनाओं का प्रसारण. अखिल भारतीय 'अम्बिका प्रसाद दिव्य' रजत अलंकरण एवं अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन का विशिष्ट साहित्य साधना सम्मान. सम्प्रति - महालेखाकार म.प्र. के अधीनस्थ वरिष्ठ संभागीय लेखा अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त, वर्तमान में लेखन कार्य में संलग्न.

सम्पर्क - १०५, साईं कृपा कॉलोनी, बाम्बे अस्पताल के पास, इंदौर- ४५२०१०

ईमेल - chandrabhanbhardwaj.4@gmail.com

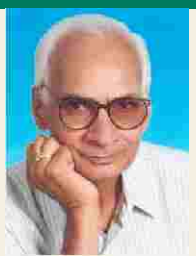

एक

हर सुबह अच्छी लगी हर शाम भी अच्छी लगी
आप से परिचय हुआ तो ज़िन्दगी अच्छी लगी

संग पाकर आपका लगने लगा मौसम भला
चाँदनी तो चाँदनी अब धूप भी अच्छी लगी

आप आकर बस गए जब से हमारे गाँव में
गाँव का हर घर मोहल्ला हर गली अच्छी लगी

एक अरसे बाद रक्खा था जलाकर इक दिया
आप आये तो दिए की रोशनी अच्छी लगी

रूप है पर रूप का अभिमान किंचित भी नहीं
आपकी यह सादगी संजीदगी अच्छी लगी

आँख काजल भाल बिंदी हाथ मेंहदी हो न हो
आपकी सूरत बिना श्रृंगार भी अच्छी लगी

गुनगुनाये आपने जब से हमारे शेर कुछ
हम को 'भारद्वाज' अपनी शायरी अच्छी लगी

■

दो

एक सपना पलक पर सजा तो सही
ज़िन्दगी को कभी आजमा तो सही

पाँव ऊँचाइयों की सतह छू सकें
सोच को पंख अपने लगा तो सही

बाजुओं में सिमट आएगा यह गगन
कोई कोना पकड़ कर झुका तो सही

एक पत्थर को देगी गला मोम सा
आग सीने में थोड़ी जला सो सही

कर न परवाह ऊँची लहर की अभी
रेत का इक घरोंदा बना तो सही

आँधियाँ राह अपनी निकल जायेंगी
डालियाँ सब अहम् की नवा तो सही

एक दिन लोग ईसा बना देंगे खुद
पहले सूली पे खुद को चढ़ा तो सही

खोलता द्वार अवसर सभी के लिए
बस किबाड़ों को तू खटखटा तो सही

प्यार को अर्घ्य देना 'भरद्वाज' पर
आँसुओं की नदी में नहा तो सही

■

राणा प्रताप सिंह

४ अप्रैल १९८४ को उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर शहर में जन्म. शिक्षा - बी.ए., गीत, ग़ज़ल, मुक्तक, नवगीत लिखते हैं एवं इन्टरनेट सहित देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित. सम्प्रति- भारतीय वायु सेना में कार्यरत.

सम्पर्क : singhpratapus@gmail.com

ग़ज़ल

एक

जब हवाएं उस गली से इस गली चलने लगी
संदली खुशबू फिजाओं में यूँ ही बहने लगी

फाख्ते का एक जोड़ा दिख गया छप्पर पे जब
हूक इक दिल में उठी और धड़कनें बढ़ने लगी

जो चली अंडे संजोती चींटियों की इक लड़ी
कोई बूढ़ी अपने टूटे बाम को तकने लगी

नीर बरसा धान के अंकुर की बेचैनी घटी
जर्द मिट्टी भी सुकूँ देकर हरी लगने लगी

उफ्कपे पहुंचा जो सूरज इज़्तिराब-ए दिल बढ़ी
ज़िक्र जो उनका छिड़ा दुनिया भली लगने लगी

हम यहाँ हैं मुन्तजिर वो जान कर भी बेखबर
जाने क्यों नीयत में उनकी खोट-सी लगने लगी

मेरे दिल से लाख बेहतर उनके कुरते की सिलन
जज्ब भी टूटी वो हमेशा बैठकर सिलने लगी
■

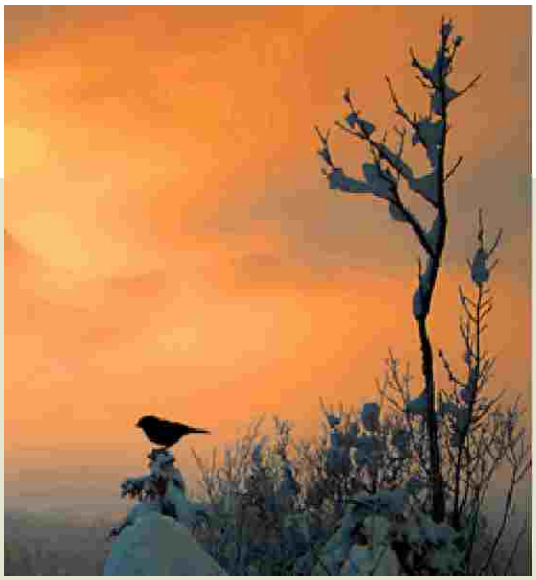

दो

भूख की चौखट पे आकर कुछ निवाले रह गए
फिर से अंधियारे की ज़द में कुछ उजाले रह गए

आपकी ताक़त का अंदाजा इसी से लग गया
इस दफे भी आप ही कुर्सी संभाले रह गए

कोशिशें कीं लाख पर फिर भी छुपा ना पाए तुम
चंद घेरे आँख के नीचे जो काले रह गए

जब से मंजिल पाई है होता नहीं है दर्द भी
देते हैं आनंद जो पाँवों में छाले रह गए

जम गए आंसू, चुका आक्रोश, सिसकी दब गई
इस पुराने घर में बस चुप्पी के जाले रह गये

अब डुबा दे या कि पहुंचा दे मुझे उस पार तू
हम तो सब कुछ भूलकर तेरे हवाले रह गए

उनसे बढ़कर इस जहाँ में है नहीं कोई धनी
अपने पुरखों की विरासत जो संभाले रह गए
■

मनीष शुक्ल

१९७१ में उन्नाव, उत्तर प्रदेश में जन्म. लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. (एन्थ्रोपोलॉजी) की उपाधि. विगत १५ वर्षों में उर्दू व हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में ग़ज़लों का प्रकाशन. सम्प्रति - प्रांतीय सिविल सेवा (वित्त एवं लेखा) १९९७ बैच के अधिकारी के रूप में शासकीय सेवारत.

सम्पर्क : ८/४, डालीबाग ऑफीसर्स कॉलोनी, लखनऊ. ईमेल - shukla_manish24@rediffmail.com

एक

फ़क़ीराना तबीअत थी बहुत बेबाक लहजा था
कभी मुझमें भी हंसता-खेलता इक शख़्स रहता था

बगूले ही बगूले हैं मिरी वीरान आंखों में
कभी इन रेगज़ारों में कोई दरिया भी बहता था

तुझे जब देखता हूं तो ख़ुद अपनी याद आती है
मिरा अंदाज़ हंसने का कभी तेरे ही जैसा था

कभी परवाज़ पर मेरी हज़ारों दिल धड़कते थे
दुआ करता था कोई तो कोई ख़ुशबाश कहता था

कभी ऐसे ही छाईं थीं गुलाबी बदलियां मुझ पर
कभी फूलों की सुहबत से मिरा दामन भी महका था

मैं था जब कारवां के साथ तो गुलज़ार थी दुनिया
मगर तन्हा हुआ तो हर तरफ़ सहरा ही सहरा था

बस इतना याद है सोया था इक उम्मीद सी लेकर
लहू से भर गई आंखें न जाने ख़्वाब कैसा था?

■

दो

हमें कुछ गर्दिश-ए-अय्याम से शिकवा नहीं है
मगर ये भी हक़ीक़त है कि जी अच्छा नहीं है

बहुत अच्छा हुआ अहसास अब मरने लगे हैं
हज़ारों ज़ख़्म हैं लेकिन कोई दुखता नहीं है

भला किसको दिखाएं जाके दिल के आबले हम
सभी जल्दी में हैं कोई ज़रा रुकता नहीं है

सभी ने तल्ख़ियों की गर्द इस चेहरे पे मल दी
और उस पर ये शिकायत भी कि अब हंसता नहीं है

न परियां है, न शहज़ादा, न लम्बी नींद इसमें
हमारी आपबीती है कोई क़िस्सा नहीं है

अबस शहर-ए-बयाबां में ये बातें छेड़ बैठे
यहां दिल की कहानी अब कोई सुनता नहीं है

बहुत ही जानलेवा है ये हस्ती का मुअम्मा
निकल जाने का भी लेकिन कोई रस्ता नहीं है

सुना करते थे रो-रोकर गुज़र जाती है रातें
मगर इस रात का कोई सिरा दिखता नहीं है

■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

फूलों की तरह खिलते लफ़्ज़

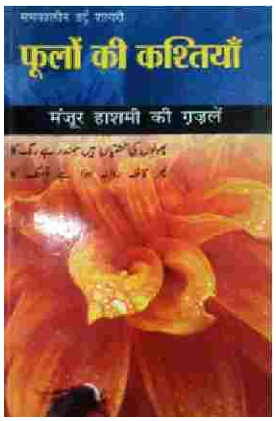

कालजयी शेर कहने वाले, बदायूं में जन्में और अलीगढ़ में पले-बढ़े अजीम शायर जनाब मंज़ूर हाशमी की मर्मस्पर्शी ग़ज़लों का हिंदी में पहला संकलन, 'फूलों की कश्तियाँ' को डायमंड बुक्स ने छापा है. इन बेजोड़ ग़ज़लों को संकलित किया है सुरेश कुमार ने. मंजूर साहब मुशायरों में अपनी ग़ज़लें धीरे-धीरे तरही में सुनाते और सुनने वाले उनके दिलकश अंदाज़ पर तालियाँ पीटते थकते नहीं थे. वे निहायत सादा इंसान थे और अपने अशआर की गहराईयों में सुनने वाले को डुबा लेते थे.

उसका तो हर अंदाज़, निराला-सा लगे है
कातिल है मिरा, और मसीहा-सा लगे है
वो जिससे कोई ख़ास तअर्रुफ़ भी नहीं है
जब भी नज़र आ जाये है अपना सा लगे है
हम उनके बिना जैसे मुकम्मल ही नहीं हैं
जो काम भी करते हैं अधूरा-सा लगे है
मैं उसकी हर इक बात को किस तरह न मानूं
वो झूठ भी बोले है तो सच्चा सा लगे है.

मंजूर साहब अपने और अपनी शायरी के प्रचार-प्रसार से दूर रहे और ताउम्र शायरी को जीते रहे. अपनी बेहतरीन शायरी के दम पर वे उर्दू जगत में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं. उन्होंने दुबई, दोहा, क़तर, पाकिस्तान, अमेरिका आदि देशों की यात्रा की और अपने चाहने वालों को खुश कर दिया. वे किसी जोड़ तोड़ या खेमे बंदी में शामिल नहीं हुए. प्रेम, सौन्दर्य और प्रकृति उनकी ग़ज़लों का मूल स्वर है.

बहुत दिनों से तो वो याद भी नहीं आया
तो फिर ये नींद में किसको पुकारा करते हैं
नहा के पंख सुखाती है धूप में तितली
तो रंग अपनी नज़र खुद उतारा करते हैं

आज की सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों पर भी उनकी शायरी कमाल ढाती है. बड़ी सादा जबान में वो अपने अशआर से दिल चीर कर रख देते हैं.

उन्हीं पत्तों पे मिटटी मल रही है
हवा जिनकी बदौलत चल रही है
अजब शै है ये शम-ऐ-ज़िन्दगी भी
कि बुझने के लिए ही जल रही है
यही तो बस्तियों में फैलती है
अभी जो आग दिल में जल रही है

अफ़सोस की बात ये है कि इस अजीम शायर की सिर्फ एक ये ही किताब हिंदी में उपलब्ध है, लगभग एक सौ साठ पृष्ठों की इस किताब में मंजूर साहब की एक सौ चौंतीस ग़ज़लें संकलित हैं. इन एक सौ चौतीस ग़ज़लों में लगभग नौ सौ शेर हैं.

> मंजूर साहब अपने और अपनी शायरी के प्रचार-प्रसार से दूर रहे और ताउम्र शायरी को जीते रहे. अपनी बेहतरीन शायरी के दम पर वे उर्दू जगत में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं.

जाने किस किस को मददगार बना देता है / वो तो तिनके को भी पतवार बना देता है

लफ़्ज़ उन होंठों पे फूलों की तरह खिलते हैं
बात करता है तो गुलज़ार बना देता है
जंग हो जाये हवाओं से तो हर एक शजर
नर्म शाखों को भी तलवार बना देता है. ■

नीरा त्यागी

नई दिल्ली में जन्म. मिरांडा हाऊस, दिल्ली यूनिवर्सिटी से विज्ञान में स्नातक. ब्रिटेन के सरकारी प्रोजेक्टस में मैनेजर की नौकरी. पिछले कुछ समय से ब्रिटेन की हिंदी बिरादरी और हलचल में कविताओं और कहानियों के जरिये कोशिश. लिखना सिर्फ आसमान और वज़ूद की तलाश नहीं, जमीन और जड़ों से जुड़ने का प्रयास भी. काहे को ब्याहे बिदेस (www.neerat.blogspot.com) पर ब्लागिंग.

संपर्क- neerat@gmail.com

कहानी

कन्वेयर बेल्ट पर उगता माटी का सोना

फ्लाईट आये घंटे से ऊपर हो चला था पर उन दोनों का कहीं अता-पता न था. उनके आने की ख़ुशी में उसे ढाई सौ मील के सफ़र का पता न चला, पर अब मंजिल पर पहुँच कर एक-एक मिनट घंटों से कम नहीं. वो उसके घर पहली बार आ रहे थे. पिता को तो एतराज़ न था किन्तु उनकी सरकारी नौकरी इजाज़त नहीं देती कि बेटी के घर महीने भर से ज्यादा रह सकें और माँ को उनका बेटी की माँ होना रोकता था. चलो दोनों आने को तो राज़ी हुए महीने भर को ही सही.

जिन बातों को अब तक वह चिट्ठी और फोन पर बताती रही है वो खुद देख लेंगे जैसे सूरज का धरती से अक्सर नाराज रहना और बादलों को धरती से हद से ज्यादा प्यार करना, हर मौसम में जमीन के हर कोने में घास का धूल-मिटटी को जकड़े रहना, टायरों की चीख के बीच शमशान की शांति का सड़कों पर पसरे रहना. बेचारे गीले कपड़ों को धूप नसीब न होना, उनका लांड्री की मशीनों में भभकती भाप में झुलसना, पानी के लोटे का बाथरूम के फर्श को तरसना, लोटे से पानी उड़ेल खुल कर नहाने पर पाबन्दी होना, हवा की नमी को विंड स्क्रीन पर सेलोटेप की तरह चिपक जाना और स्क्रेपर के साथ मिल कर बेहूदा आवाज़ निकालना, गाड़ी का पेट भी उसमें से निकल कर खुद भरना. अनजान बच्चों का सड़क पर चलते-चलते 'पाकी' बुला कर अभिनन्दन करना, यदि आप सही और गलत वक्त पर थंकयू और सारी न कह पाए तो प्यार भरी आँखों के तीर के दर्द को अपनी नासमझी समझ कर भूल जाना.

अब उसकी आँखें और कमर दोनों जवाब देने लगे थे. वो सभी यात्री आने बंद हो गए थे जिनके सूटकेस और बैग पर एरो फ्लोट के टैग हों. कहाँ हो सकते हैं. टायलेट में भी इतनी देर तो नहीं लग सकती. इन्क्वारी पर यह उसका तीसरा चक्कर था. वो फ्लाईट लिस्ट चेक कर के उसे बता चुके हैं उनका नाम लिस्ट में है. उसका संयम टूटने लगा और चिंता बढ़ने लगी थी.

वह समय की गंभीरता को हल्का-फुल्का बनाने और उसके माथे पर चिंता की लकीरों को गालों के गड्ढों में बदलने

> *जिन बातों को अब तक वह चिट्ठी और फोन पर बताती रही है वो खुद देख लेंगे जैसे सूरज का धरती से अक्सर नाराज रहना और बादलों को धरती से हद से ज्यादा प्यार करना, टायरों की चीख के बीच शमशान की शांति का सड़कों पर पसरे रहना.*

के लिए अपने होंठों को उसके कानों के नज़दीक ला धीरे से फुसफुसाया.

वो कहीं रशिया में अपने दूसरे हनीमून के लिए तो नहीं उतर गए. और ही.. ही.. करने लगा. उसने घूर कर उसकी ओर देखा. ऐसे अवसरों पर उसका सेंस आफ हयूमर उसे चूंटी की तरह काटता है. बिना उससे कुछ बोले वह इन्क्वारी की तरफ बढ़ गई.

वह इन्क्वारी पर गिड़गिड़ा रही है. क्या वह बैगेज क्लेम तक जाकर उन्हें देख आये. अब डेढ़ घंटा हो चला था. वो एक स्कुरिटी स्टाफ के साथ उसे अन्दर भेजने के लिए तैयार हो गए. वह उसके आगे-आगे हो ली. डिपारचर लांज को पार कर साड़ी और पेंट, कमीज़, कोट में दो पहचाने चेहरों को ढूंढने में उसे ज्यादा समय नहीं लगा, वैसे भी वो अकेले ही थे कन्वेयर बेल्ट के पास. कन्वेयर बेल्ट खाली थी, उनके सूटकेस ट्राली में थे. तभी उसे नजर आया कन्वेयर बेल्ट पर चावल का ढेर उग आया है जैसे ही वह ढेर उनके पास से गुजरता है. चार हाथ बढ़ कर उस ढेर को बेग में उड़ेल रहे हैं और इंतज़ार करते हैं. धरती के घूमने और सफ़ेद ढेर का फिर पास से होकर निकलने का. वह भाग कर पीछे से जाकर दोनों को बाहों भर लेती है वो तीनों एक दूसरे के कंधे भिगोते हैं. नाक से सू... सू... करते हुए मुस्कुराते हैं. एक-दूसरे को टीशू पास करते हैं. माँ उसे ऊपर से नीचे तक देखती है और शिकायत करती है..

उसे नजर आया कन्वेयर बेल्ट पर चावल का ढेर उग आया है जैसे ही वह ढेर उनके पास से गुजरता है. चार हाथ बढ़ कर उस ढेर को बेग में उड़ेल रहे हैं और इंतज़ार करते हैं. धरती के घूमने और सफ़ेद ढेर का फिर पास से होकर निकलने का. वह भाग कर पीछे से जाकर दोनों को बाहों भर लेती है वो तीनों एक दूसरे के कंधे भिगोते हैं.

तू ऐसी की ऐसी, ना सावन हरे ना भादों... लगता नहीं आखरी महीना है. कभी तो लगे बिटिया. तभी सफ़ेद ढेर पास से गुजरता है वह भी हाथ बढ़ाती है. माँ पकड़ कर झिड़क देती है. ऐसी हालत में झुकना ठीक नहीं. तू बस खड़ी रह. बहुत थकी लगती है.

पिता को कहती है सूटकेस उतार दो बैठने के लिए. वह माँ को क्या समझाए ऐसी हालत में वो यहाँ क्या नहीं करती.

कहा था न इन्हें सूटकेस में भर लेते हैं. माँ शिकायत के लहजे में बोली.

अरे! मैंने कौन-सा मना किया था. पिता झल्ला कर बोले.

अब क्या फरक पड़ता है वो बेग में थे या सूटकेस में. वो हमेशा की तरह दोनों के बीच रेफरी बनी.

वो दोनों से जिद करती है वहां से चलने की.

रहने दो, माँ बहुत अच्छा बासमती चावल मिलता है यहाँ.

पर यह देहरादून का बासमती चावल है.

वह सिक्योरिटी स्टाफ की तरफ देखती है, वो उसकी तरफ देख कर मुस्कुराते हुए सर हिलाते हुए मुड़ जाता है.

वह पहाड़ों के बीच घाटी में खड़ी है, उसके चारों तरफ धान के खेत हैं, वह मुस्कुराते हुए देखती रहती है चार हाथ बड़ी तमन्यता से अपनी माटी का सोना बेग में भर रहे हैं.

उनके हाथों से गुजर अनगिनित सफ़ेद दानों की महक उसके ज़हन में हमेशा के लिए बसने जा रही है. ■

शशि रंजन मिश्र
१२ मार्च १९८० को आरा, बिहार में जन्म. इलेक्ट्रॉनिक्स में एम.टेक. की उपाधि. हिन्दी और भोजपुरी में व्यंग्य और कविता लेखन. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य और कविताएँ प्रकाशित. सम्प्रति - बहुराष्ट्रीय तकनीकि रिसर्च संस्थान में कार्यरत.
संपर्क : बी/३०७/२, छतरपुर एक्सटेंशन, नयी दिल्ली -११००७४ इमेल : shashi18ranjan@gmail.com

इस दिवाली उल्लू पूजन

हे उल्लू महाराज! इस बार सिर्फ आपका ही आसरा है. जानता हूँ, आप लक्ष्मीजी के प्रिय हो. अपने विशाल पंखों पर बिठा उन्हें सांसारिक उल्लुओं के ऊपर कृपा करने के लिये हरेक दिवाली ना जाने कितना कष्ट उठाते हो. आपके इस महानतम चरित्र से भले ही दुनिया मुंह फेर ले, दूसरों को नीचा दिखाने के लिए उसे आपका पुत्र (पट्ठा) घोषित कर दे. आपके एकाग्रचित स्वभाव को आपकी तरह आँखें फाड़ कर देखने का जुमला तैयार कर ले या आपके सीधेपन को अपना उल्लू सीधा करना बता दे. आप कुछ नहीं कहते. आप निर्विरोध सदियों से इन सारे कटु वचनों का सहर्ष पान कर रहे हैं. लेकिन आपका यह अनन्य भक्त गूगल महाराज की कृपा से उन सारे रहस्यों को जान चुका है. आपकी महानता को अब अक्षरशः पढ़ चुका है. अपितु, इस दीवाली प्रण ये है कि लक्ष्मीजी की पूजा से पहले आपकी पूजा की जायेगी. भारतीय संस्कृति का यहाँ पूर्ण रूप से निर्वहन किया जायेगा. साहब से पहले चपरासी को मक्खन लगाने का रिवाज है, इस प्रथा को यहाँ भी लागू कर आपकी महानता को जग उजागर किया जायेगा. ऐसा ही प्रण इस अदने से सेवक ने लिया है.

उल्लूकराज नमस्तुभ्यम, नमस्तुभ्यम रजनीचरः।
लक्ष्मीवाहन नमस्तुभ्यम, नमस्तुभ्यम मूढःप्रिय।।

कृपा करो हे मूढ़ मदन, इस दिवाली की रात लक्ष्मी जी को बहला फुसला कर मेरे घर तक ले आओ. अगर वो नहीं आना चाहें तो सिर्फ मेरे छप्पर के ऊपर से गुजर जाना और ऐसे पंख फड़फड़ाना कि लक्ष्मी जी के कलश से २-४ जवाहरात ही बरस जाएँ. जानता हूँ प्रभु! तुम निशाचर हो. अंधे को दो आँखों की चाहत ताउम्र रहती है मगर आप तो प्रभु अन्धकार में ही नयन-ज्योत पा लेते हो. धन्य हो प्रभु! आपकी यह शक्ति अगर सूरदास पा लेते तो उनकी अँखिया हरी दर्शन को प्यासी नहीं रहतीं.

प्रभु, पिछली बार शाहरुख खान बार बार टीवी पर कह रहा था कि दो दीये अधिक जलाओ. मैंने उसकी सलाह को अमल किया, पड़ौसी के घर की रौशनी से अपना गुजारा करनेवाली अपनी जन्मजात आदत को तिलांजलि दे, दो दीये ही जलाए. मगर क्या पता था इस रौशनी से आपकी आँखे चौंधिया जायेंगी और मेरे

> *"अंधे को दो आँखों की चाहत ताउम्र रहती है मगर आप तो प्रभु अन्धकार में ही नयन-ज्योत पा लेते हो. धन्य हो प्रभु! आपकी यह शक्ति अगर सूरदास पा लेते तो उनकी अँखिया हरी दर्शन को प्यासी नहीं रहतीं."*

पड़ौसी जो कोयले के ठेकेदार हैं उनपर कृपा कर दोगे. अब मुझे समझ में आ गया आपको गहरा काला रंग और अँधेरा बहुत पसंद है. इसलिए इस बार मैंने भी अपने घर में अँधेरा रख रहा हूँ. ये अँधेरा आपको ही दिख सकता है. प्रभु, बस इसी अँधेरे को नज़र कर लक्ष्मी जी को यहाँ ले आओ.

संसार जानता है आप मांसाहारी हो, फिर ये विष्णु और लक्ष्मी जैसे वैष्णव के घर में आपका गुजर कैसे होता है? बस एक बार आपकी कृपा हो जाये प्रभु तो मैं अपने घर के सारे मच्छर, खटमल, दीमक, तिलचट्टे ,चूहे और छुछुन्दर आपको समर्पित कर दूँ. कहाँ आप विष्णु के वैष्णव घर में घिर अपने प्राकृतिक आहार से दूर हो रहे हैं और अपना जयका खराब कर रहे हैं. आपको जब भी अपनी जिह्वा का स्वाद बदलने का मन करे आप मेरी कुटिया में जरूर पधारें. हो सके तो दो-चार दिन यहीं रुक कर मेरा आतिथ्य ग्रहण करें. जब लक्ष्मी जी आपको अपने सानिध्य में नहीं पाएंगी तो जरूर आपको मुझसे अलग करने के लिए कुछ प्रपंच करें. हो सकता है की मेरी सारी आशाओं आकांक्षाओं को अपने माया से समझ लें और उसकी पूर्ति कर दें.

आपके अनुज (वर्णमाला में क्रमानुसार 'म' का स्थान 'उ' से बहुत नीचे है) मोर जिसे लक्ष्मी की बहन सरस्वती ने अपना वाहन बना लिया, उसे सारा संसार पूजता है. भारतवर्ष में राष्ट्रीय पक्षी घोषित है. बेढंगे पैरों वाले का निष्क्रिय पंख देवताओं ने अपने मुकुट में लगा लिए और आप जैसे शांत-विनम्र मुनि तुल्य खग को जो हमेशा संसार के चिंता में एकाग्रचित रहता हो, उसकी उपेक्षा की गयी. लेकिन अब ऐसा नहीं होगा, अन्ना हजारे ने भ्रष्टाचार का अँधेरा मिटाने के लिए अनशन का मशाल जलाया, अब जहाँ भ्रष्टाचार ना हो वहाँ लक्ष्मी जी कहाँ टिकती हैं. और जब वो टिक ही नहीं सकती तो आप कहाँ टिकोगे? इसलिए इस बार भारतवर्ष के पदासीन राजतान्त्रिक मतवाले जनतंत्र के रक्षकों ने जनलोकपाल बिल का पुरजोर विरोध किया. आपके अनन्य भक्त हैं, वो आपके तकलीफों को ध्यान में रख भ्रष्टाचार का अँधेरा व्याप्त रखना चाहते है. बुरा हो इन आंदोलनकारियों का, जिन्हें अँधेरे का महत्व पता नहीं.

प्रभु, आप भी जानते हो लक्ष्मी चंचला हैं, अब जहाँ लेनदेन ही न हो तो ऐसे में लक्ष्मी जी की प्राणवायु ही रुक जायेगी. और तो और एक ही जगह की जलवायु में घुटन भी होने लगती है. इसीलिए तो इस देश के अगुवाओं ने लक्ष्मी जी को विदेश भ्रमण तक करा दिया. रिजर्व बैंक से लेकर स्विस बैंक की रंगीन गलियां घुमा दीं. बस ये बाबा रामदेव टाइप के लोग ही आपके और लक्ष्मी जी के विदेश भ्रमण की राह में रोड़ा बने हुए हैं. प्रभु, इन बाबा और अन्ना जैसे लोगों से

इस बार भारतवर्ष के पदासीन राजतान्त्रिक मतवाले जनतंत्र के रक्षकों ने जनलोकपाल बिल का पुरजोर विरोध किया. आपके अनन्य भक्त हैं, वो आपके तकलीफों को ध्यान में रख भ्रष्टाचार का अँधेरा व्याप्त रखना चाहते है. बुरा हो इन आंदोलनकारियों का, जिन्हें अँधेरे का महत्व पता नहीं.

आपके जीवन की खुशियाँ छीन सकती हैं. इनके सत्य और सहिष्णुता की मशाल आपके आँखों को व्यथित कर सकती हैं. इसलिए हे प्रभो, इन नामों से आप हमेशा दूर ही रहें.

सुबह विविध भारती पर बजते सहगल साहब के 'करूँ क्या आस निराश भई...' ने मेरी सारी आशाओं को दरकिनार कर दिया. वर्षों तक हम जिस आस में दीपक जलाये बैठे थे कि इस रोशनी से मेरी खुशियाँ रोशन होंगी, क्या पता था मैं अब तक आपको कष्ट देकर खुद कितना कष्टमय जीवन जी रहा था और त्यौहार के नाम पर खुशफहमी का शिकार था. लेकिन अब ये आँखें खुल गयी हैं. मैं भी अंधकार के 'गुह्याति गुह्यं...' रहस्यों को समझने लगा हूँ. इसीलिए आपके स्वागत कि पूरी तयारी कर ली है. इसीलिए कल ही मेरे गली के नुक्कड़ पर लटकते और बरसों से नहीं बदले गए पीली रोशनीवाले बिजली के बल्बों को मेरे हाथों प्रक्षेपित शिला खण्डों से शहीद होना पड़ा. रात भर मोहल्ले के कुत्तों ने उनके याद में मातम मनाया और कलमा भी पढ़ा. घर के सारे लालटेनों से मिटटी का तेल निकाल कर उन्हें प्राण हीन कर दिया है. बिजली का फ्यूज गायब है. बस अँधेरा ही अँधेरा है. मैं भी धारावाहिक शक्तिमान का जैकाल बन गया हूँ. बस इस दिवाली अँधेरा कायम रहे. आपको मेरा घर ढूंढने में दिक्कत न हो इसलिए अपना पता भी दे रहा हूँ.

भक्त उल्लुकचरणानुरागी दास, बरगद के पेड़वाली गली के बाद तीसरी गली के अंदर, पीपल के पेड़ के पास कोनेवाला मकान, अंधेर नगरी.

बस आपको उन शहीद हुए बल्बों और मृतप्राय लालटेनों कि कसम, प्रभु! झलक दिखलाजा, झलक दिखलाजा... एक बार आजा आजा आ जा...■

निदा फ़ाज़ली एवं शोभित देसाई सम्मानित

विगत माह लन्दन के हाउस ऑफ़ लार्डस के उस हाल में बेहद गर्माहट थी जहाँ यू.के. हिंदी समिति के तत्वाधान एवं बैरोनैसफ्लैदर के संरक्षण में वातायन : पोएट्री ऑन साउथ बैंक सम्मान समारोह का आयोजन किया गया. वातायन प्रतिवर्ष भारत के कवियों को कविता में योगदान के लिए सम्मानित करती है.

पिछले वर्ष यह सम्मान जावेद अख्तर और प्रसून जोशी को दिए गए थे. समारोह में प्रसिद्ध कवि और लेखक श्री निदा फ़ाज़ली एवं श्री शोभित देसाई को वातायन अवार्ड से सम्मानित किया गया. मुख्य अतिथि के रूप में सत्येन्द्र श्रीवास्तव ने इस समारोह की शोभा बढ़ाई. बीबीसी के पूर्व प्रोड्यूसर, साउथ एशियन सिनेमा जर्नल के संपादक, ललित मोहन जोशी ने संचालन की बागडोर संभाली और फिर यूके हिंदी समिति के अध्यक्ष, डॉ. पद्मेश गुप्त क स्वागत वक्तव्य और पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन से समारोह का आगाज़ हुआ. लन्दन स्थित स्वतंत्र पत्रकार, लेखक शिखा वार्ष्णेय ने इस साल के चयनित कवि शोभित देसाई के सम्मान में सम्मान पत्र का वाचन किया. तत्पश्चात शोभित देसाई को बैरोनैसफ्लैदर एवं सत्येन्द्र श्रीवास्तव द्वारा पुरस्कार प्रदान किया गया. इसके बाद निदा फ़ाज़ली साहब के एक गीत, ये जो दुनिया है, ये जादू का खिलौना है, को राजन सेंगुनशे और उत्तरा सुकुमार जोशी ने सस्वर सुनाया. बीबीसी के पूर्व प्रोड्यूसर, हेल्थ एंड हैप्पीनेस पत्रिका के संपादक, एन.आर. आई. रेडिओ के संस्थापक, विजय राणा ने सम्मान पत्र पढ़ा और बैरोनैसफ्लैदर एवं सत्येन्द्र श्रीवास्तव ने निदा साहब को लाइफ टाइम अचीवमेंट पुरस्कार देकर सम्मानित किया.

समारोह में शोभित देसाई एवं निदा फाजिल के वक्तव्य के पश्चात एक अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मलेन का आगाज किया गया जिसकी बागडोर स्वयं शोभित देसाई ने संभाली और इसमें मोहन राणा, तितिक्षा, चमनलाल चमन, सोहन राही और स्वयं निदा फाज़ली जैसे दिग्गजों ने भाग लिया. कवि सम्मेलन बेहतरीन रहा और श्रोताओं की तालियों और वाह-वाह से हॉल लगातार गूंजता रहा.

समारोह की अध्यक्षता कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्राध्यापक एवं लेखक डॉ. सत्येन्द्र श्रीवास्तव ने की तथा प्रस्तावना यूके हिंदी समिति के अध्यक्ष और पुरवाई के संपादक डॉ. पद्मेश गुप्त की रही. वातायन की संस्थापक अध्यक्ष दिव्या माथुर एवं बोरोनेस फेदर ने सभी मेहमानों का धन्यवाद किया. समारोह में लन्दन के सांस्कृतिक संस्थाओं के अध्यक्ष, साहित्य और पत्रकारिता से जुड़े बहुत से गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे.

प्रस्तुति : शिखा वार्ष्णेय

इंटरनेट के जरिये गर्भनाल पत्रिका के कुछ अंक प्राप्त हुए. कुशल सम्पादन, प्रबन्धन और सुदर्शन प्रस्तुति के लिये गर्भनाल पत्रिका परिवार को हार्दिक बधाई. पत्रिका में प्रकाशित सुन्दरकांड पर मनोज कुमार श्रीवास्तवजी की 'व्याख्या' पढ़कर आत्मिक संतोष मिलता है.

पुष्पिता अवस्थी, नीदरलैंड

गर्भनाल के नवम्बर अंक में प्रकाशित अनुराग शर्मा के आलेख 'कितना पैसा, कितना काम' के संदर्भ में इस तथ्य को भी अनदेखा नहीं किया जाना चाहिये कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा प्रदान किये जाने वाले वार्षिक पैकेज में वेतन और अन्य सुविधाएँ अनेक बार अलग-अलग न होकर एकजाई तौर पर प्रदान की जाती हैं. इसके अलावा डॉलर और रुपये की विनिमय दर तथा क्रय शक्ति भी ऐसा पहलू है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता. उदाहरण के लिये एक करोड़ रुपये के वार्षिक पैकेज को आज के डॉलर-रुपया विनिमय दर ($1=Rs. 53.8) पर बदलें तो यह $1,85,873 डॉलर बनता है. अमेरिका में भी इस वेतन को अच्छा कहा जायेगा. परन्तु बाज़ार का डॉलर-रुपया विनिमय दर केवल उन चीजों के ऊपर लागू होना चाहिए जिनमें खुले तौर पर अन्तराष्ट्रीय व्यापार होता है. कितनी चीजें ऐसीं हैं जिनमें अन्तराष्ट्रीय व्यापार नहीं होता है. उदाहरण के लिए हम भारत के अन्दर किये गए रेलयात्रा को लें. इसका अन्तराष्ट्रीय व्यापार नहीं होता है इसलिए भारत में रेल का किराया अमेरिका में रेल के किराये से बहुत कम है. इस तरह के कई उदाहरण मिलेंगे. भारत के सकल घरेलु उत्पाद (जीडीपी) के आधे से अधिक हिस्से में अन्तराष्ट्रीय व्यापार नहीं होता है. इसको अगर ध्यान में रखा जाये तो डॉलर-रुपया विनिमय दर $1=Rs.16.28 होगा. इसको Purchasing Power Parity विनिमय दर कहते हैं. यह आंकड़ा २००९ का है. इसके बाद का आंकड़ा उपलब्ध नहीं है. इस विनिमय दर पर लाभार्थी को अमेरिका में $6,14,250 कमाने पड़ते तब वह भारत में एक करोड़ पाने वाले के बराबर वेतन कमाता. इस तरह देखा जाये तो एक करोड़ रुपये का वेतन अच्छा तो है लेकिन उतना अच्छा नहीं जितना पहली नज़र में लगता है.

राघबेन्द्र झा, ऑस्ट्रेलिया

पत्रिका का स्तर, प्रत्येक अंक के साथ उच्च से उच्चतर होता जा रहा है. बबीता बाधवानी जी ने 'अपनी बात' में जो लिखा उसे पढ़कर लगा कि जब हिंदुस्तान में हमारे विद्यालयों में तथा हमारे न्यायालयों में हिन्दी की यह स्थिति है तो और किसी क्षेत्र से क्या आशा रखें. 'इमरती' कहानी बहुत पसंद आई. एक औरत यदि दूसरी औरत का दर्द समझे तो नारी जाति पर हो रहे अत्याचार बंद तो नहीं, लेकिन बहुत कम किये जा सकते हैं. महेंद्र कुमार शर्मा की रम्य-रचना 'मेरे कंधे, उनकी बंदूक' पसंद आई. 'विवेक' चिंतन भी पसंद आया. यूं तो सभी स्तम्भ अपने आप में अनूठे हैं, लेकिन मुझे 'बातचीत' विशेष पसंद आती है. इस स्तम्भ के द्वारा बड़े-बड़े लेखकों और कवियों से रूबरू होने का सुअवसर मिलता है.

आशा मोर, त्रिनिदाद एवं टोबेको

गर्भनाल का नवम्बर-२०१२ अंक मिला. सभी लेख सामयिक तथा सारगर्भित थे. विशेष रूप से उल्लेखनीय लेखों में कैलाश शर्मा द्वारा लिखित 'सम्वेदना और सहनशीलता क्यों मर रही है' का जिक्र करना चाहूंगा. इस लेख ने आज के हालात का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है. समाज तो दूर अब तो परिवार में ही लोग आपस में दूर होते जा रहे हैं. वन या टू बीएचके के घरों में भी लोग एक-दूसरे से कटे हुए अपने-अपने दडबों-कमरों में कैद अपनी ही दुनिया में मस्त रहते हैं. वे नहीं चाहते कि उनकी निजता में कोई दखल दे. समाज के लिए यह सब बहुत घातक है जिस बात पर सोचने के लिए किसी के पास समय ही नहीं है.

विनय मोघे, कोल्हापुर

गर्भनाल के इस रंग-बिरंगे, रोमांचक और निःशुल्क अंक के लिये बहुत धन्यवाद. गर्भनाल प्रारंभ से ही एक संतुलित पत्रिका के रूप में छाया हुआ है. यूं तो इसमें राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक आदि तमाम विषयों से संबंधित लेख होते हैं. लेकिन ताजा नवम्बर अंक में दीवाली से संबंधित आलेख का न होना खल गया. भारत जैसे विशाल और महान देश की प्राचीन संस्कृति को उजागर करने में तथा उसकी विविधता को सतत जीवंत बनाये रखने में गर्भनाल जैसे प्रयासों का योगदान उल्लेखनीय है.

श्रीधर के. गणपति, मुंबई

> *अब तो परिवार में ही लोग आपस में दूर होते जा रहे हैं. वन या टू बीएचके के घरों में भी लोग एक-दूसरे से कटे हुए अपने-अपने दडबों-कमरों में कैद अपनी ही दुनिया में मस्त रहते हैं. वे नहीं चाहते कि उनकी निजता में कोई दखल दे.*

पुस्तक मिली

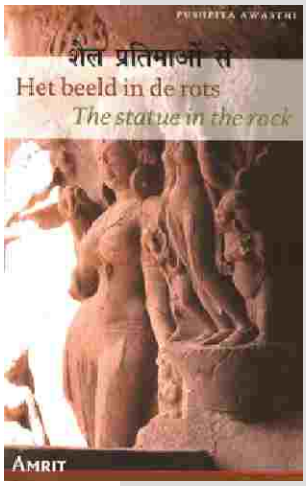

शैल प्रतिमाओं से
Het beeld in de rots
The statue in the rock

पुष्पिता अवस्थी

Design by
Studio Daniels BV
Published by
Amrit Consultancy
www.amcon.nl

हिन्दी-डच-अंग्रेजी में एक साथ प्रकाशित काव्य-संग्रह

गर्भनाल के नवम्बर-२०१२ अंक में आशा मोर की कविता 'अनाथाश्रम में बच्चा' दिल को छूती है. कितना अच्छा हो अगर इन बच्चों को वहाँ माँ जैसी ममता मिले. मदर टेरेसा याद आ गयीं जो कहा करती थीं कि हम यहाँ हर किसी को ये यकीन दिलाते हैं कि वो खास है और उसका जन्म विशेष उद्देश्य से हुआ है. बच्चे तब खुश हो जाते थे और दूसरों को भी खुश करने का प्रयत्न करते थे। 'सकारात्मक सोच' यानि अच्छा है ये सोचना कि कोई नहीं आया तो क्या उसके आने की खुशी में दो हफ्ते तो खुशी में बीते.

राजकिशोर का 'अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस के मायने' लेख सही दिशा में इशारा कर रहा था कि अंहिसा का मतलब अन्याय सहना तो है ही नहीं. इसके साथ सच की ताकत होती है. अगर आप सच्चे हैं तो आप किसी से डरते नहीं, आप अपने सच के साथ खड़े रहते हैं अहिंसात्मक होकर, क्योंकि आपका उद्देश्य किसी को नुकसान पहुँचाना नहीं होता. कहते हैं जितनी भी नारियाँ है अगर वो अपने साथ होती हिंसा में, वो हिंसा करने वाला हाथ पूरी शक्ति से रोक लें तो वास्तव में हिम्मत होगी अहिंसात्मक रूपी, क्योंकि वो वहाँ अन्याय नहीं सहना चाहती, मार नहीं खाना चाहती साथ ही अहिंसात्मक तरीके से बता भी देंगी कि मैं कायर नहीं – चाहूँ तो पलटवार करके अपनी रक्षा भी कर सकती हूँ. पर बात वही आती है पुरानी रूढ़ियों के चलते कितने लोग हैं जो ये शिक्षा अपनी बेटियों को दे रहे हैं. अभी तो ये ही सिखाया जाता है कि अन्याय व हिंसा सहो पर रहो वही और बोलो भी कुछ नहीं.

लेखक बहुत सही कहते हैं जो राष्ट्र खुद अहिंसा का पालन नहीं करते वो अहिंसा दिवस अंतराष्ट्रीय स्तर पर कैसे मनायेंगे.

बबीता, जयपुर

आपकी बात

Thanks for sending this across. I am amazed at your passion for regularly coming out with the Garbhanal issues, that also without losing an eye for quality. Just read the editorial by Respected Ganganand jha ji.

The last line just struck me : *"Zindagi aise sawaal puuchhati rahati hai jinake jawaab nahi hua karate. Samaanyatah shikshan sansthaon mein hi aise sawaal puuchhe jaate hain jinake jawaab tayashuda hon."*

My humble submission to this statement is: "Zindagi aise sawaal puuchhati rahati hai jinake jawaab (apane) bhitar hote hain, baahar nahi. Samaanyatah shikshan sansthaon mein aise sawaal puuchhe jaate hain jinake jawaab baahar hote hai."

Vinay Mehta, Chandigarh

मैं गर्भनाल पत्रिका को अपनी व्यस्तता के बावजूद मनोयोग से पढ़ता हूं. इसमें प्रकाशित मजमूनों में काफी हद तक सद्भाव की बू आती है. लेखों का चयन भी सावधानी से किया जाता है. मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें.

अली आदिल खान

गर्भनाल के ७२वें अंक में राजकिशोर का आलेख 'अन्तरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस के मायने' अत्यंत महत्वपूर्ण है. गर्भनाल में जिन लेखों को चयनित किया जाता है वे पाठकों के लिये कई मायनों में प्रामाणिक संदर्भ सिद्ध होते हैं. हिन्दी के पक्ष में आपका यह प्रयास जारी रहे, यही कामना है.

सुशील बुद्धिकोटि, हिसार

अनुरोध

पाठकों एवं रचनाकारों से अनुरोध है कि प्रतिक्रियायें एवं रचनाएँ यूनिकोड में भेजें, हमें सुविधा होगी. रचनाओं के साथ संक्षिप्त परिचय एवं फोटो भी भेजें. अंक के बारे में अपनी प्रतिक्रिया निम्नलिखित ईमेल पते पर भेजें :

garbhanal@ymail.com

HINDIUSA.ORG

- संयुक्त राज्य अमेरिका का सबसे बड़ा हिन्दी स्वयंसेवक संघ.
- 70 समर्पित स्वयंसेवक तथा स्वयंसेविकाओं द्वारा संचालित.
- 250 से अधिक निःस्वार्थ शिक्षक कार्यरत.
- हिन्दी पाठशालाओं में लाभ उठाने वाले विद्यार्थियों की संख्या 4,000.
- अमेरिका में प्रति वर्ष द्विदिवसीय हिन्दी महोत्सव का आयोजन करना.
- विभिन्न राज्यों में विशाल कवि सम्मेलन का आयोजन करना.
- प्रवासी विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से तैयार की गई आकर्षक पुस्तकें तथा पाठ्यक्रम.
- प्रति वर्ष विभिन्न 9 स्तरों की लिखित तथा मौखिक परीक्षा का आयोजन करना.
- प्रशिक्षण द्वारा आत्मविश्वासी तथा अच्छे हिन्दी शिक्षक तैयार करना.
- वयस्कों को भी हिन्दी सीखने की सुविधा प्रदान करना.
- 'कर्मभूमि' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन.
- भारत के बाहर सबसे बड़ा 'हिन्दी भवन' बनाने की योजना
- अमेरिका की पाठशालाओं में हिन्दी को एक ऐच्छिक भाषा के रूप में लाने के लिए कार्यरत (न्यूजर्सी की तीन पाठशालाओं में सफलता).
- पुस्तकालयों के लिए हिन्दी पुस्तकें चुनना और उपलब्ध करवाना.
- नौकरीपेशा या अन्य विद्यार्थियों को व्यक्तिगत शिक्षण की सुविधा प्रदान करना.

आइये,
हमारे साथ मिलकर
अपनी संस्कृति को
सुदृढ़ बनाइये!